मनोरंजन पुस्तकमाला—३६

संक्षिप्त

रामचंद्रिका

संकलनकर्त्ता

लाला भगवानदीन

संपादक

पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०
एल्-एल० बी०, डी० लिट्०

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की अनुमति से

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

चतुर्थ संस्करण] सं० १९९७

भूमिका

यह रामचंद्रिका के सक्षिप्त रूप का दूसरा संस्करण है। श्रद्धेय गुरुवर स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी ने इसका पहला संस्करण प्रस्तुत किया था। इसके सकलन में उन्होंने इन बातों का विशेष ध्यान रखा था—"(१) कोई उत्तमांश छूटने न पावे, (२) अनावश्यक, कम आवश्यक और कठिन अंश छोड दिये जावे, (३) यथासंभव सरस और सरल अंश अवश्य लिये जावे, (४) जिनके पढने-पढ़ाने में अथवा किसी को समझाने में संकोच हो ऐसे अ श सरल और सरस होने पर भी छोड दिये जावे और (५) यथासंभव, वर्णित विषयों का क्रम भी भग न होने पावे।" (प्रथम संस्करण की भूमिका से)

इन बातों का ध्यान रखते हुए स्वर्गीय लालाजी ने मूल ग्रथ में से बहुत थोडा अ श छोडा था। परतु इधर विद्यार्थियो के अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकताओं ने यह अनुभव कराया है कि पुस्तक का और अधिक सक्षेप होना आवश्यक है। अतएव इस सस्करण मे पचास पृष्ठ के लगभग का आकार कम कर दिया गया है। इस पुनः-संक्षेप-कार्य मे न° २ और ३ पर अधिक जोर दिया गया है। परंतु इतना विचार अवश्य रखा है कि कठिनता ही के लिये कोई अ'श

छोड़ा न जाय और सरलता ही के लिये कोई अंश ... या जाय। पहले संस्करण मे धनुष-यज्ञ के अवसर पर रावण बाणासुर-सवाद छूट गया था। परंतु यह सवाद केशव के धनुष-यज्ञ की विशेषता है इसलिये उसका सक्षेप भी इस सस्करण मे रख दिया गया है।

केशव ने रामचंद्रिका के रूपक को आगे बढ़ाते हुए रामचद्रिका के सर्गों का 'प्रकाश' नाम रखा था। परतु स्वर्गीय लालाजी ने प्रकाशों को हटाकर कथा को कांडों मे विभक्त कर दिया है। असल मे वाल्मीकि की रामायण का विद्वत्समाज के ऊपर इतना प्रभाव जमा है कि उनके 'रामायण' और 'कांडों' के सामने तुलसीदास के 'रामचरितमानस' और 'सोपान' आदि नाम भी न चलने पाये। तब यदि केशव के प्रकाशों को उनके कांडों के लिये जगह छोडनी पडे तो कोई बडी बात नहीं। जन साधारण के मन मे राम-कथा स्वभावतः इन्हीं विभागों में विभक्त है।

प्राचीन काव्यों का पाठ स्थिर करने का कार्य बडा कठिन है। आजकल मूल प्रतियों का मिलना दुःसाध्य है। फिर भी अन्वेषणकर्त्ता विद्वानों के मत के अनुकूल उचित पाठ रखने का इस सस्करण मे प्रयत्न किया गया है।

केशव का काव्य जटिल है। इसलिये पाद-टिप्पणियों में कठिन अशों का स्पष्टीकरण आवश्यक समझा गया है। बुदेलखडी शब्दो का अर्थ स्वर्गीय लालाजी ने दे दिया था

इस संस्करण मे टिप्पणियाँ और भी बढा दी गई हैं। यथास्थान प्रसग-गर्भ कथाओं की ओर भी सकेत कर दिया गया है।

इस सस्करण में एक छोटी सी प्रस्तावना भी जोड दी गई है, जिससे आशा है कि विद्यार्थियों और साधारण पाठको की कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

स्वर्गीय लालाजी केशव के बडे भक्त थे। उनके 'प्रेत-काव्य' के उद्धार का कार्य वही आरभ कर गये थे। उन्हे उनके अच्छे अच्छे ग्रथों पर सुदर और सरल टीकाओं का अभाव खटकता था, जैसा कि पहले सस्करण की भूमिका मे उन्होने प्रकट किया है। अपनी इहलोक-लीला सवरण करने के पहले आप रामचद्रिका और कविप्रिया पर उत्तम टीकाएँ प्रस्तुत कर अपने पांडित्य का प्रसाद हमे दे गये। केशव के ग्रथों के सुदर सुदर अंशों का उन्होंने केशव-पचरत्न मे सग्रह किया। परतु उनके बाद अब यह उद्धार-कार्य बिलकुल बद सा हो गया है। यदि केशव के शेप ग्रंथों का भी उद्धार हो जाय तो लालाजी की स्वर्गस्थित आत्मा को बडा सतोष होगा।

गणेश-चतुर्थी,
१९९०

पीतांबरदत्त बड़थ्वाल

तीसरे संस्करण की भूमिका

छापे की जो गलतियाँ दूसरे सस्करण में रह गई थीं, वे इस संस्करण में सुधार दी गई हैं।

पी० द० ब०

प्रस्तावना

केशवदास जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे। उन्होंने राम-चंद्रिका में स्थल स्थल पर सनाढ्यों की प्रशसा की है। राम के राज्याभिषेक के समय उन्होंने प्रार्थना करते हुए यज्ञादिकों से राम के प्रति कहलाया है कि आपने "प्रगट सकल सनौढियन के प्रथम पूजे पाइ।" लवणासुर-वध के अवसर पर जब देवताओं ने प्रसन्न होकर शत्रुघ्न से वर माँगने को कहा तो सनाढ्यों की प्रशसा करते हुए उन्होंने यह वर माँगा—

केशवदास का जीवन-वृत्त

सनाढ्य वृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै।
अकालमृत्यु सो मरै। अनेक नर्क मो परै।
सनाढ्य जाति सर्वदा। यथा पुनीत नर्मदा।
भजैं. सजै जे सपदा। विरुद्ध, ते असपदा।

केशवदास पडित-कुल में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम काशीनाथ मिश्र था और पितामह का कृष्णदत्त मिश्र। पं० कृष्णदत्त को उन्होंने 'जगत्प्रसिद्ध पडितराज' कहा है (कृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पडितराव), और काशीनाथ की गणेश से तुलना की है (गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध)। केशव के पूर्वजो का निवासस्थान डीग कुम्हेर था, जो व्रजमडल में है। परतु महाराज मधुकरशाह

के समय मे कृष्णदत्तजी ओडछे आकर बस गए थे। शीघ्र-बोध नामक ज्योतिष-ग्रथ के रचयिता इन्हीं के पुत्र काशीनाथ थे। जान पडता है कि काशीनाथ को सतमत की विशेष जानकारी थी (अशेप शास्त्र विचारि कै जिन जानियो मत साध)। विरक्ति-सबंधी ज्ञान, जो विज्ञानगीता से प्रकट होता है, केशव को इन्हीं के ससर्ग से प्राप्त हुआ होगा। काशीनाथ के बलभद्र, केशवदास और कल्याणदास तीन पुत्र हुए। तीनो के तीनों कवि थे। बडे भाई बलभद्र ने 'नखशिख' नामक साहित्यिक ग्रंथ का प्रणयन किया और सबसे छोटे भाई कल्याण-दास की बहुत सी स्फुट रचनाएँ प्राप्त हैं। परतु इसमे सदेह नहीं कि मझले भाई केशव अपने परिवार भर मे सबसे बडे विद्वान् और कवि हुए। केशव का जन्म सं० १६१८ मे ओडछे ही मे हुआ। इनकी कवित्व-शक्ति और विद्वत्ता के कारण ओडछे के राज-दरबार मे इनका बड़ा मान हुआ। मधुकरशाह के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र रामशाह (दूलहराम) ढलती उमर मे ओडछे की गद्दी पर बैठे। उन्होंने सारा राज-काज अपने छोटे भाई इद्रजीतसिह के ऊपर छोड दिया। इद्रजीतसिह वडे गुणग्राही थे। उन्होंने केशव को केवल राजकवि ही का पद प्रदान न किया वल्कि उनको गुरु और मत्री के तुल्य भी माना। राजा इंद्रजीत की श्रद्धा ने अनुचित आलबन नही ढूँढ़ा था, अवसर पडने पर केशव अपने वुद्धि-वल से इस वात का प्रमाण देते रहे। एक वार रामशाह के सातवें भाई वीरसिंहदेव ने

सलीम की मित्रता के वश अबुलफजल को युद्ध के लिये ललकार कर मार डाला। इस पर नाराज होकर जब अकबर ने इंद्रजीतसिंहदेव पर एक करोड रुपया जुर्माना कर दिया तो केशव ही ने दिल्ली जाकर बीरबल की सहायता से उसे माफ कराया था। केशव के विस्तृत साहित्यिक ज्ञान की बात ही क्या कहनी है। राजा इंद्रजीतसिंह ने केशव को २२ गाँव जागीर में दिए थे जिनमे से झाँसी से तेरह मील दक्षिण की ओर 'कुटेरा' गाँव की जमींदारी अब तक उनके वशजों के पास है। इंद्रजीतसिंह के अनुग्रह से केशवदास को जो विभव प्राप्त था वह किसी राजा के विभव से कम न था। इसी से कृतज्ञता प्रकट करते हुए केशव ने कहा है—'भूतल को इंद्रजीत राजै जुग-जुग केसोदास जाके राज राज सो करत हैं' (कविप्रिया, ४-२१)।

स० १६६२ में अकबर के मर जाने पर जहाँगीर बादशाह हुआ। उसने वीरसिंह को सारे बुंदेलखड का पट्टा लिख दिया। वीरसिंह और रामशाह मे ओडछे की गद्दी के लिये ठन गई। हारकर रामसिंह दिल्ली चले आए। वीरसिंह गद्दी पर बैठे। वीरसिंह ने भी केशव का आदर किया, यद्यपि उनका जो मान इंद्रजीतसिंह के समय मे था, वह उन्हे शायद ही प्राप्त हुआ हो। वीरसिंह का यशोगान उन्होंने वीरसिंहदेव-चरित मे किया है। अत मे ऐसा भी समय आया कि

केशव केसनि अस करी जस अरिहू न कराहिँ।
चद्रवदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिँ॥

कहकर बुढ़ापे के सफेद बालों पर अफसोस करनेवाले केशव को भी ज्ञान-विज्ञान की सूझी और विज्ञानगीता रचकर उन्होंने राजा वीरसिंह को सुनाई। फिर उन्होंने राजकवि-पद से अवकाश चाहा और गगा-सेवन की आज्ञा माँगी। उनकी इच्छा के अनुसार उनकी वृत्ति और उनका पद उनके लडकों को दिया गया। इस बात का उल्लेख विज्ञानगीता मे इस प्रकार है—

"सुनि सुनि केशवदास सो रीझि कह्यो नृपनाथ।
माँगि मनोरथ चित्त के कीजै सबै सनाथ॥"
"वृत्ति दयी पुरुषान की देउ बालकनि आसु।
मोहि आपनो जानि कै गगातट द्यौ वासु।"
"वृत्ति दयी पदवी दयी दूरि करौ दुख त्रास।
जाइ करौ सकलत्र श्री गगा-तट बस बास॥"

इससे मालूम होता है कि स० १६६७ मे वे स्त्री सहित गंगातट पर किसी तीर्थ मे चले गये। परतु बहुत समय तक वहाँ रहे नहीं, क्योंकि स० १६६९ मे उन्होंने जहाँगीर-जस-च द्रिका लिख डाली जिसे लिखने की उन्हे विरक्त दशा मे आवश्यकता न पड़ती।

केशव हिंदी-साहित्य के इतिहास मे प्रथम दिग्गज आचार्य थे। उन्होंने ही पहले-पहल हिंदी मे साहित्य-शास्त्र के अध्ययन का विस्तीर्ण तथा अप्रतिबद्ध मार्ग खोला। 'कवि-प्रिया', 'रसिकप्रिया' आदि उनके लक्षण-ग्रथों से उनके सस्कृत-साहित्य के अगाध ज्ञान का पता चलता है। अपने

इस साहित्य-ज्ञान को उन्होंने केवल कुछ ग्रथों में ही ग्रथित नहीं किया बल्कि एकाध सुयोग्य शिष्यो मे भी सचरित किया। इद्रजीतसिह की रखेली वेश्या प्रवीणराय का उनकी शिष्या होना प्रसिद्ध ही है। प्रवीणराय अत्यत सहृदय कवयित्री थी और वेश्या होने पर भी पतिव्रता थी। 'रमा कि राय प्रवीन' कहकर केशवदास ने उसकी लक्ष्मी से तुलना की है। इद्रजीतसिंह के जुर्माने की माफी की शर्त के तौर पर जब एक बार अकबर ने उसे दरबार मे बुलाया था तो उसने अपनी कवित्व-शक्ति से अकबर को केवल रिझाया ही नहीं, अपने पातिव्रत की भी रक्षा की। 'ऊँचे ह्वै सुर बस किये, सम ह्वै नर बस कीन, अब पताल बस करन को ढरकि पयानो कीन।' की फुही से अकबर झूम उठा और 'जूठी पतरी भखत हैं, वायस बारी स्वान' की चोट उसे सीधे रास्ते पर ले आई। स्वय केशव प्रवीणराय की कवित्वशक्ति के कायल थे। कहते हैं कि राम-विवाह के अवसर के लिये उनसे अच्छी गाली न बन पडी तो उन्होंने उसे प्रवीणराय से लिखवाया।

परतु हिंदी के प्रसिद्ध शृगारी कवि बिहारी भी केशव के शिष्य थे, इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं। ओडछे के पास गुढौ ग्राम में टट्टी सप्रदाय के नरहरिदासजी रहते थे जिनके यहाँ केशवदासजी आया-जाया करते थे। बिहारी के पिता केशवराय उनके शिष्य थे। पत्नी के मर जाने पर विरक्त होकर केशवराय भी ग्वालियर छोडकर ओडछे चले आए

जिससे गुरु के सत्संग के लिये अधिक अवसर मिले। इसी समय के लगभग नरहरिदासजी के अनुरोध से केशवदास ने बिहारी को कुछ काल तक अपने पास रखा और काव्य-रीति की शिक्षा दी। बिहारी की कविता से साहित्य-शास्त्र का जो गभीर ज्ञान प्रकट होता है, वह प्रकांड पडित गुरु की ओर सकेत करता है, और यह सकेत केशवदास ही पर ठीक बैठता है। बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने बहुत अन्वेषण के बाद बिहारी की एक जीवनी लिखी थी जो नागरी-प्रचारिणी पत्रिका [नवीन सदर्भ] के आठवे भाग मे प्रकाशित हुई है। उसमे उन्होंने इस बात पर प्रकाश डाला है। रत्नाकरजी को यहाँ तक सदेह हुआ है कि हो न हो बिहारी के पिता केशवराय और केशवदास एक ही व्यक्ति थे। इसके मानने में सबसे बडी अडचन यह है कि केशवराय सखी सप्रदाय के थे और केशवदास ने विज्ञानगीता में सखी सप्रदाय का विरोध किया है। अतएव बिहारी उनके पुत्र नहीं, शिष्य थे।

केशवदास के काव्य के पुरस्कर्ताओं मे बीरबल का भी नाम लिया जाता है। इद्रजीतसिंह के राजकाज के सबध मे दिल्ली आते-जाते केशव का उनसे परिचय हुआ होगा। कहते है, एक बार केशव बीरबल से मिलने गये तो उन्होंने कहला भेजा कि तबीयत खराब है—अजीर्ण हो गया है, इससे मिल नहीं सकते। इस पर केशव ने यह दोहा लिख भेजा—

जस जार्‌यो सब जगत को भयो अजीरन तोहि ।
अपजस की गोली दऊँ, तत्कालहिं सुधि होहिं ॥

दोहे को पढकर बीरबल उसी क्षण बाहर निकल आए। तब केशव ने बीरबल की प्रशसा मे यह छद पढा—

केशवदास के भाल लिख्यो बिधि रक को अंक बनाय सँवार्‌यो ।
धोयं धुवै नहिं छुटो छूटै, बहु तीरथ जाय कै नीर पखार्‌यो ॥
ह्वै गयो रक ते राव तबै जब वीरबली नृपनाथ निहार्‌यो ।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुख चार्‌यो ॥

कहते है, इस पर प्रसन्न होकर वीरबल ने केशवदास को छः लाख का पुरस्कार दिया ।

जान पडता है कि गोसाई तुलसीदासजी से भी केशवदास का साक्षात्कार हुआ था। गोसाई जी बहुत प्रसिद्ध साधु और कवि थे इससे बहुत से कवि उनसे मिलने के लिये जाया करते थे। एक ऐसे ही प्रसग का वर्णन बाबा वेणीमाधवदास ने अपने मूल गोसाई चरित मे किया है। घनश्याम सुकुल, घासी-राम, बलभद्र आदि कवि गोसाई जी के दर्शनों के लिये गए हुए थे, उसी समय केशव भी उनसे मिलने के लिये पहुँचे। शिष्यों ने जब उनके आने की खबर गोसाई जी के पास अदर भेजी तो उन्होंने कहा—'प्राकृत कवि केशवदास को ले आओ।' केशव ने यह सुन लिया। उन्होंने समझा, इन्हे रामचरित-मानस रचने का बडा गर्व है, उसे दूर करना चाहिए और उलटे पाँवों वापिस आकर उन्होंने एक ही रात मे रामचद्रिका

बनाकर दूसरे दिन तुलसीदास को दिखा दी। यह कथानक स्पष्ट ही असत्य नहीं तो अतिरंजित अवश्य है।

वेणीमाधवदास के अनुसार यह घटना सं० १६४० की होनी चाहिए। परंतु रामचंद्रिका में रचनाकाल स्पष्टतया सं० १६५८ दिया हुआ है। हो सकता है कि तुलसीदासजी के कहने से ही केशवदासजी ने रामचंद्रिका की रचना की हो।

एक और प्रसंग में उनके साथ तुलसीदासजी का नाम लिया जाता है। कहते हैं कि गोसाईं जी ने केशवदास का प्रेत-योनि से उद्धार किया। वेणीमाधवदास ने लिखा है कि बादशाह के निमंत्रण पर दिल्ली जाते हुए गोसाईंजी ओड़छे के पास से गुजरे। इसी समय किसी पेड़ पर से केशव की प्रेतात्मा ने 'त्राहि त्राहि' पुकारा और तुलसीदासजी ने रामचंद्रिका का पाठ करवाकर उनकी मुक्ति करवा दी। कोई कहते हैं कि तुलसीदासजी शौच के लिये कुएँ से लोटे में पानी खींच रहे थे कि केशव की प्रेतात्मा ने लोटा पकड़ लिया और कहा कि जब तक प्रेत-दशा से हमारी मुक्ति न कर दोगे, लोटा नहीं छोड़ेंगे। तुलसीदासजी ने केशव को इक्कीस बार सारी रामचंद्रिका दोहराने का उपदेश दिया। केशव को सारी रामचंद्रिका तो याद थी पर मंगलाचरण ही याद न पड़ता था। गोसाईंजी ने वह बतला दिया और केशव मुक्त हो गये।

केशव की मृत्यु और उनके प्रेत होने की कथा भी विचित्र है। चुने चुने गुणी जन ओड़छे के दरबार में एकत्र थे।

राजा वीरसिंहदेव को इस बात का खेद था कि काल के प्रभाव से यह विद्वन्मंडली छिन्न हो जायगी। किसी ने उन्हें बतलाया कि यदि एक बृहद् यज्ञ करके राजा समेत सारी विद्वन्मडली उसमे भस्म हो जाय तो प्रेतयोनि मे अनत काल तक उनका साथ बना रहेगा। कहते हैं, राजा वीरसिंह ने यही किया। ओडछे मे वह यज्ञस्थल अब तक बतलाया जाता है। नहीं कह सकते कि इस कथानक मे सत्य का अंश कितना है। यदि सब लोगों का किसी यज्ञ मे जल मरना सत्य है तो इसका किसी यज्ञ के समय आकस्मिक दुर्घटना का परिणाम होना अधिक सभव है।

ऊपर की दोनों घटनाएँ यदि और नहीं तो इतना अवश्य सूचित करती हैं कि गोसाईंजी के रहते ही केशवदासजी की मृत्यु हो गई थी। तुलसीदासजी की मृत्यु स० १६८० मे हुई थी। और केशव की अतिम रचना जहाँगीर-जस-चद्रिका में निर्माण-काल सं० १६६९ दिया हुआ है। इससे निश्चय है कि केशवदास की मृत्यु स० १६६९ और १६८० के बीच किसी समय मे हुई होगी। कुछ विद्वानों के अनुमान से सवत् १६७४ उनका मृत्यु-सवत् होना चाहिए।

ओड़छे के व्यासपुरा मुहल्ले मे इमली के एक बहुत पुराने पेड के निकट एक खँडहर है। कहते है, यही केशवदास का मकान था। इमली का पेड़ भी उन्हीं का बतलाया जाता है।

केशवदास ने साहित्य-शास्त्र के सभी अंगों पर कुछ न कुछ लिखा है। रसिकप्रिया (रचना-काल—सं० १६४८) मे परपरागत परिपाटी के अनुसार रस का विवेचन है। संस्कृत के रस-निरूपक ग्रथों से इसमे यही भेद है कि इसमे केशव ने नायिका भेद दिखलाते हुए प्रत्येक भेद के प्रकाश और प्रच्छन्न दो उपभेद किए हैं। कविप्रिया (१६५८) अलकार-ग्रथ है। दूसरे केशव मिश्र के अलंकार-शेखर के अनुसार अलकार शब्द का इसमे बहुत व्यापक अर्थ किया गया है और उसके वर्णालंकार, वर्ण्यालकार और विशेषालंकार तीन भेद बताए गए है। वर्णालकार के अ तर्गत भिन्न रंग, वर्ण्यालकार में शेष वर्णनीय विपय और विशेषालंकार मे सामान्य काव्यालकार लिए गए हैं। काव्यालकारों का वर्णन सामान्यतया पुरानी ही परिपाटी के अनुसार है। रस भी इस ग्रथ मे अलंकारों की सामग्री माना गया है और रसमय स्थल रसवत् अलकार की सीमा में चले आए है। इन दोनों ग्रंथों मे भेदोपभेद की ओर केशव ने विशेष प्रवृत्ति दिखलाई है और कितने ही ऐसे भेदों का उल्लेख किया है जिनके लिये वस्तुतः कोई कारण नहीं है। परतु इसमें सदेह नहीं कि इन दोनों ग्रथों मे उदाहरणों के रूप में जो पद्य दिए गए है वे सुदर और चमत्कारपूर्ण है। शब्द-विन्यास भी श्लाघनीय है। परतु रसिकप्रियावाले पद्य अधिक सरस और प्रांजल हैं। ('नखशिख' साधारणतया अच्छा ग्रथ है जिसमें

केशवदास के ग्रथ

नायिका के अंग-प्रत्यग का वर्णन है। कहते हैं कि पिंगल पर भी केशव ने कोई ग्रंथ लिखा था। उनका रामालकृत मजरी नामक ग्रथ बतलाया जाता है, जो अब तक प्रकाश मे नहीं आया है। अनुमान होता है कि यही उनका पिंगल-ग्रथ रहा होगा।

जहाँगीर-जस-चद्रिका (स० १६६९) और वीरसिंहदेव-चरित्र (स० १६६४) चरित-काव्य हैं जो अच्छे नहीं बने हैं। पहले में जहाँगीर का वर्णन है और दूसरे मे इंद्रजीतसिंह के भाई वीरसिंह का। रतनबावनी भूषण की शिवा-बावनी के ढग का एक छोटा सा वीररसपूर्ण ग्रथ है जिसमे इद्रजीतसिंह के बडे भाई रत्नसिंह की वीरता का वर्णन किया गया है, जिसने सोलहवे वर्ष की अवस्था मे ही युद्ध मे वीर-गति प्राप्त की थी।

विज्ञानगीता (स० १६६७) मे केशव ने हिंदू दार्शनिक पद्धति से विरक्तिमूलक ज्ञान का वर्णन किया है। इसमें मानसिक भावों की सदसत्ता तथा उनके परस्पर साहाय्य और विरोध का उद्घाटन, रूपक का आश्रय लेकर, कथा के रूप मे किया गया है। बौद्धों और सखी सप्रदायवालों की उसमें काफी निंदा की गई है।

परतु केशव का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ रामचद्रिका है जिसमें उन्होंने रामचद्र का यशोगान किया है। इस समय हमारा इसी ग्रंथ से विशेष प्रयोजन है। प्रस्तुत ग्रथ रामचद्रिका का ही सच्छिप्त सस्करण है। अतएव हम यहाँ पर इसी ग्रथ के सबध में कुछ विचार करेंगे।

केशवदास महाकवि माने जाते हैं। यद्यपि 'महाकवि' से बड़े कवि का भी अभिप्राय निकल सकता है फिर भी

रामचद्रिका में महाकाव्यत्व

साहित्य-शास्त्र की रूढ़ि के अनुसार 'महाकवि' शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। महाकवि का अभिप्राय 'महाकाव्यकार' समझा जाता है। इस अर्थ मे केशव का महाकवित्व बहुत कुछ रामचद्रिका के ही ऊपर निर्भर है। रसिकप्रिया और कविप्रिया हिंदी-साहित्य के इतिहास मे साहित्यशास्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रथ हैं। इनमें केशव का वह शक्तिमान् प्रयत्न निहित है जिसने हिंदी के क्षेत्र मे साहित्य-शास्त्र के अध्ययन का अबाध मार्ग खोल दिया। परतु ये ग्रथ उन्हे आचार्य-पद दिला सकते हैं, महाकवि नहीं बना सकते। वीरसिंहदेव-चरित और जहाँगीर-जस-चद्रिका ऐसे शिथिल ग्रथ हैं कि किसी भी साहित्यिक की नजरों मे उनका मूल्य नहीं चढ़ा है। रामचंद्रिका ही एक ऐसा ग्रथ है जो किसी तरह महाकाव्य कहा जा सकता है।

महाकाव्य होने के लिये किसी भी काव्य मे कुछ बातों का होना आवश्यक है, जिनके हुए बिना हम उसे महाकाव्य न कह सकेंगे। महाकाव्य की सबसे पहली आवश्यकता है उसमे काफी लबे सर्गबद्ध प्रबध का होना। महाकाव्य प्रबध-काव्य है। किसी काव्य की महत्ता इसी बात मे है कि वह मानव-जीवन का सर्वागीण स्पर्श करे। काव्य को यह व्यापकता न तो मुक्तक गीतों मे प्राप्त हो सकती है और न छोटे उपाख्यानों

(खंड काव्यों) मे जिनमें या तो एक ही भाव पर जोर दिया जाता है अथवा जीवन का एक ही अंश दृष्टि-पथ में लाया जाता है। इसके लिये जीवन के सब पहलुओं का चित्राकरण आवश्यक है जो विस्तार क बिना असंभव है। इसी दृष्टि से महाकाव्य के लिये बारह या अधिक सर्गों का विधान है। इस विस्तार का रामचंद्रिका मे अभाव नहीं है। प्राचीन सिद्धातों के अनुसार जीवन का वही सर्वांगीण चित्र श्लाघ्य माना जाता है, जो किसी महान् व्यक्ति अथवा धीरोदात्त नायक को केंद्र बनाकर चला हो। आजकल की तरह इस उदात्तता की परख केवल भावों की शालीनता और महत्ता से ही नहीं होती थी, वश की उच्चता भी उसके लिये आवश्यक समझी जाती थी। उच्च भाव उच्च कुल के योग मे ही सार्वजनिक आकर्षण के आधार हो सकते थे। इसलिये देवता, राजा, राजकुमार अथवा मंत्री या उच्चपदस्थ ब्राह्मण ही किसी महाकाव्य के नायक हो सकते थे। सार्वजनिक रुचि का आकर्षण ही इस नियम का उद्देश्य था। कुल का आज वह महत्त्व नहीं रह गया है, जो प्राचीन काल में था इसलिये शायद उदात्तता के लिये उसकी आवश्यकता का अब उतनी तीव्रता से अनुभव न हो सके परंतु उसके उद्देश्य के सबध मे आज भी संदेह नहीं होना चाहिए। रामचद्रिका में इस नियम का भी पूर्ण रूप से पालन हुआ है। रामचद्र मे उच्च भावनाओं और कुलीनता का सहज समन्वय हुआ है। महाकाव्य के लिये

उनसे बढ़कर नायक ही कौन मिल सकता है? रामचंद्र ही की जीवन-गाथा को लेकर रामचद्रिका की रचना हुई है। परतु महाकाव्य के लिये कथानक (वस्तु) ही का होना काफी नहीं है। महाकाव्य का प्रबंध होना आवश्यक है। नाटक में भी कथानक होता है परंतु उसे प्रबध नहीं कहते। प्रबंध बँधा हुआ होना चाहिए, उसमें कथानक की जंजीर मे की सब कड़ियों का स्पष्ट दर्शन होना चाहिए। नाटक मे अगर बीच बीच की कड़ियाँ छूटती जायँ तो भी काम चल जाता है किंतु प्रबध में नहीं। राम-चद्रिका में कहीं भी कथानक की शृखला टूटी हो, यह नहीं देखा जाता परतु फिर भी उसमें प्रबध की सी सु-बद्धता नहीं मिलती। इसका कारण उसमें प्रयुक्त दृश्य काव्य के से संवादों की बहुलता है। सवादों का अधिकतर कवि की ओर से विवरण नहीं है। यह अमुक व्यक्ति का वचन है, इसका निर्देश काव्य का अ ग नहीं है, बल्कि नाटकीय ढग पर उन वचनों का उल्लेख किया गया है। इसमे सदेह नहीं कि इसी कारण रामचद्रिका को पढ़ने मे नाटक का सा आनंद आने लगता है। लेकिन जो प्रबध-काव्य को नाटक का आन द उठाने के लिये पढ़ता है उसे दूसरे घोंसले में जाना चाहिए। इस सबंध में आजकल की कहानियों और उपन्यासों मे प्रयुक्त कथोपकथन की बिना नाम दिये हुए लिखने की प्रणाली का उदाहरण केशवदास की ओर से पेश नहीं किया जा सकता है। नाटकीय ढग में संवादों को देने की इस स्वच्छंदता को अपनाने का साहस आज के

सियारामशरण (पद्य-कहानी-लेखक) और मैथिलीशरण (महा-काव्यकार) को भी नहीं हुआ है। सजीवता लाने के लिये भी संवादों को इस प्रकार नाटकीय ढग से रखना आवश्यक नहीं है। सजीवता वार्तालाप में आनेवाली बातों में होती है और बिना नाटकीय ढग के भी उसका अस्तित्व रह सकता है। यह भी बात नहीं है कि केशवदास इस स्वतत्रता से जान-बूझकर काम लेना चाहते थे। उसे उन्होंने पद्धति रूप मे स्वीकार नहीं किया है, यदि उन्हे यह अभीष्ट होता तो सर्वत्र उसका निर्वाह करते। बात यह है कि प्रसन्नराघव तथा हनु-मन्नाटक से केशव ने कई श्लोकों का ज्यों का त्यों अनुवाद किया है जिन्हे उन्होंने प्रबध के भीतर पूर्ण रूप से पचाने का प्रयत्न नहीं किया है। जहाँ पर उन्होंने उसे पद्धति के रूप मे लिया है—ऐसे भी कुछ स्थल हैं—वहाॅ पर का सौंदर्य कुछ दूसरा ही है, वहाॅ असमर्थता का भान भी नहीं होता। मेरा संकेत यहाँ पर उन छंदों से है जिनमें प्रश्नोत्तर क्रम से चलते रहते हैं।

परतु इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि रामचंद्रिका प्रबध नहीं है, क्योंकि वस्तुतः प्रबध की धारा कहीं पर टूटती नहीं है, यद्यपि उस धारा का सूत्र पकडने में पाठक को कुछ देर अवश्य लग जाती है।

प्रबध-धारा के सूत्र को पकडने मे बाधा उपस्थित होने का एक और कारण रामचद्रिका में विद्यमान है। महाकाव्य के लिये नियम है कि उसके प्रत्येक सर्ग मे आदि से अंत तक

एक ही छंद हो, केवल सर्गांतवाले एक पद्य में छंद का परिवर्तन हो। प्रत्येक सर्ग की कथा प्रायः अपने मे पूर्ण होती है। कथा ही की ओर ध्यान रहने के लिये यह बात आवश्यक है कि पाठक को बदलते हुए छदों की लय से अपनी मानसिक स्थिति का समन्वय करने की बार-बार आवश्यकता न पडती रहे। अन्यथा कथा के सूत्र को छोड़कर ध्यान छद की लय की ओर चला जाता है और कुतूहल का भाव, जो किसी भी कथानक मे रुचि उत्पन्न करता है, शिथिल पड़ जाता है। महाकाव्य मे इसी बात को बचाने के लिये यह नियम बनाया गया है। कथानक को प्रवाह देने के लिये यह आवश्यक है कि कुछ दूर तक एक ही छद चलता रहे, केवल कथानक के एक पूर्णांश की समाप्ति की सूचना देने के लिये सर्गांत मे छंद बदले। परंतु रामचद्रिका में इसी बात की अवहेलना की गई है। पद पद पर छंद बदलता रहता है। प्रबंध-काव्य होने के बदले वह अधिकतर छंदों का अजायबघर हो गया है। आदि मे एकाक्षरी से लेकर कई अक्षरों तक के छंद एक ही स्थान पर मिलते हैं। इतना ही नही उसमे प्रायः साहित्य-शास्त्र के सब लक्षणों के उदाहरण जान-बूझकर प्रस्तुत किए मालूम होते है। दोषों के भी उदाहरण नहीं छोडे गए हैं। मालूम होता है, जैसे फुटकर पद्यों का तरतीबवार सग्रह कर दिया गया हो, विषय की सभावनाओं को देखते हुए जिन्हे उन्होंने वह रूप दे डाला, जो हमें आज देखने को मिलता है।

परतु इतना सब होने पर भी हम यह नहीं कह सकते कि रामचंद्रिका में प्रबध नहीं है। प्रबध का टूटता सा दिखाई देना दूसरी बात है और टूट ही जाना दूसरी बात।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचद्रिका मे महाकाव्य के प्राय: सभी लक्षण पाए जाते हैं। इसी लिये वह महाकाव्य माना भी जाता है। परंतु बाहरी लक्षण ही सब कुछ नहीं हैं। ये लक्षण महाकाव्य के बाह्यावरण मात्र की सूचना देते हैं, जिसका महत्त्व इसी मे है कि वह अ तरात्मा के आवरण का काम करता है, उसके स्थित रहने के लिये आधार प्रस्तुत करता है। अ तरात्मा से अलग उसका अपना कोई मूल्य नहीं है। महाकाव्य को 'महान्' होने के पहले काव्य होना चाहिए। यदि वह काव्य नहीं है तो उसकी महत्ता, उसका विस्तार कौड़ी काम का नहीं हो सकता।

रामचंद्रिका में काव्यत्व

हमारे यहाँ काव्य को परखने की कसौटी रस माना जाता है, वही काव्य की अ तरात्मा है। रस उस आन द को कहते हैं जो किसी भाव के उदय होने से लेकर परिपकावस्था तक उपयुक्त सांगो-पांग परिस्थितियो के बीच निर्वाह को अनुभूति-पथ में ले आने से होता है। इसमे सदेह नहीं कि कविता भाव-प्रधान होती है परंतु वही भाव कविता को आकर्षण प्रदान कर सकता है जो विशिष्टताओं से मुक्त होकर साधारण मानव-हृदय की अनु-भूति का विषय हो सकता है, उसकी वासनाओं को जगा देता

है। कवि के हृदय मे क्या भाव जागरित हुआ है, सारा महत्त्व इसी का नहीं। इससे अधिक महत्त्व इस बात का है कि वह पाठक या श्रोता के हृदय में कहाँ तक उस भाव को उद्बुद्ध कर सका है। किसी भाव को संप्रेषण की यह योग्यता (कम्युनिकेबिलिटी) उपयुक्त परिस्थितियों मे सांगो-पांग निर्वाह ही से मिल सकती है। इसी उद्देश्य से आधुनिक पाश्चात्यों ने भी काव्य में स्वाभाविक पूर्ण चित्र (इमेज) की प्रधानता मानी है। काव्य का यही तत्त्व पाठक को व्यक्तिगत विशेषताओं से मुक्त कर कुछ काल के लिये शुद्ध मनुष्यमात्र बना देता है। परतु काव्य में चित्र को स्वाभाविक पूर्णता तब तक नहीं मिल सकती, सांगोपांग परिस्थितियों के बीच भाव का निर्वाह तब तक नहीं हो सकता जब तक अपने वर्ण्य विषयों के बाहरी आवरण को भेदकर कवि उनके अंतरतम मे प्रवेश नहीं पा जाता। इस क्रांतदर्शिता के तत्त्व को ध्यान में न रखने के कारण ही रस-पद्धति अब उस प्राचीन सजीव वस्तु का प्रस्तरांतरित (फौस्सिलाइज्ड) रूप मात्र रह गई है जिसमे रूपाकार के सब चिह्न तो विद्यमान हैं, परतु जीवन का लचीलापन सख्ती मे बदल गया है। यही कारण है कि उसका बे-समझ होकर अनुकरण करने से बहुत से कवि केवल काव्य के कंकाल को खडा कर पाए हैं। परतु कंकाल के बाहर रक्त-मांस का सुंदर आवरण तभी पनप सकता है जब उसके अंदर जीव भी हो।

क्रांतदर्शिता प्राप्त करने के लिये साहित्य-शास्त्र का पठन-पाठन ही अलम् नहीं है। उसके लिये सूक्ष्म निरीक्षण चाहिए। सवेदनशील हृदय को लेकर आँखे खोले रहना अपेक्षित है। अनुभूति-सचय के लिये विशेष उपार्जन-यात्रा की आवश्यकता नहीं। सामान्य व्यवहार में पद पद पर उनका साक्षात्कार होता रहता है। आवश्यकता है उन्हे स्वायत्त करने के लिये सवेदनशील हृदय की, जिस पर उनका अक्स अपने आप पड जाय। कवि के निर्माण में विधाता का हाथ यहीं पर आता है। कवि जन्म से होता है, बनाने से नहीं—यह कवि के हृदय की सवेदनशीलता को ही लक्ष्य करके कहा गया है। परतु विधाता अथवा प्रकृति को पक्षपाती न समझना चाहिए। वह प्रत्येक मनुष्य को सवेदनशील हृदय दकर जगत् में भेजता या भेजती है। बालक का घास-पत्तों, मिट्टी के ढेलों से सुख प्राप्त कर सकना इस बात का साक्षी है। जिस प्रकार अभ्यास से कविता के बहिरग के निर्माण में कुशलता प्राप्त हो सकती है, उसी प्रकार अनभ्यास से सवेदनशीलता नष्ट होती जाती है। लार्ड मेकॉले की यह उक्ति कि ज्यों ज्यों सभ्यता का विकास होता है त्यों त्यों कविता का ह्रास होता जाता है, सभ्यता के विकास के साथ जीवन के अप्राकृतिक आवरणों की वृद्धि के कारण सवेदना-शक्ति के अनभ्यास की अधिक सभावनाओं की ओर ही सकेत करती है।

रामचंद्रिका के समीक्षण से पता चलता है कि साहित्य-शास्त्र के आचार्य होने के कारण केशव ने काव्य के बहिरंग की ओर इतना ध्यान दिया कि उनके हृदय की संवेदनशीलता उपेक्षित होकर सो गई। यही कारण है कि सूक्ष्म बुद्धि होने पर भी उनका निरीक्षण उतना सूक्ष्म और पर्याप्त नहीं है जितना किसी कवि में होना चाहिए।

मनुष्यजीवन तो उनकी आँखों में कुछ पड भी गया था पर प्रकृति में अंतर्हित जीवन का स्पंदन वे नहीं देख पाए। मनुष्य-जीवन की भिन्न भिन्न दशाओं में जहाँ उनकी दृष्टि गई है वहाँ उनकी भावुकता भी जागरित हो गई है। कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं।

उसके सुख को देखकर जलनेवाली सौत को और जलाने की कौशल्या की यह इच्छा कितनी स्वाभाविक है—

रहौ चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु,
न देखि सकैं तिनके उर दाहु;

और जो नासमझी और चारित्रिक निर्बलता के कारण अपने ही प्रिय का अपकारी बन जाय ऐसे आदरणीय के प्रति भी यह उपेक्षा और झुँझलाहट भी—

लगी अब बाप तुम्हारेहिं बाइ।

किसी अपने ही मुँह से अपनी तारीफ करनेवाले की गर्वोक्तियाँ सुनकर दिल में खुद-बखुद तानेजनी की जो उमंग उठती है उसे परशुराम के प्रति भरत के इस कथन में देखिए—

हैहय मारें नृपति सँहारे सो यश लै किन युग युग जीजे।

दूसरे ही प्रकार के प्रसग मे यह भाव मैथ्यू आर्नल्ड ने इस प्रकार प्रकाशित किया है—

टेक हीड लेस्ट मेन शुड से
लाइक सम ओल्ड माइजर, रुस्तम होर्ड्स हिज फ़ेम
ऐंड शंस टु पेरिल इट विद यंगर मेन।

प्रभाव प्रकारातर से दोनों का एक ही पडता है। भड़काने का यह अच्छा तरीका है।

ग्रसी बुद्धि सी चित्त चिंतानि मानो।
किधौ जीभ दंतावली में बखानो॥—

में राक्षसियों के बीच घिरी हुई सीता की परवशता का यथा-तथ्य चित्र खिंच जाता है। 'दाँतों मे जीभ' तो परवशता का द्योतक होकर मुहाविरे के रूप मे लोगों की जबान पर पहले ही से चढ़ा था, पर चिंताग्रसित बुद्धि भी उसे प्रकट करने में कम समर्थ नहीं है।

भय और लज्जा से मनुष्य किस प्रकार सिकुड जाता है, वह रावण के सामने सीता की उस दशा में दिखाया गया है जिसमे उन्होंने

सबै अ ग लै अ ग ही मे दुरायो।

मनुष्य पर जब घोर आपत्ति आती है तब वह पागल सा हो जाता है। वियोग भी ऐसी ही आपत्ति है, जिसमें वियुक्त अपनी सुध-बुध भूल जाता है, अपनी परिस्थिति को नहीं देखता, ककड-पत्थर से भी प्रश्न करके उत्तर को प्रतीक्षा करता

है। परंतु यह पागलपन मानसिक अव्यवस्था का फल नहीं होता, बल्कि प्रियाभिमुख अत्यंत सजग राग का निकास है। हनुमान राम की मुद्रिका साथ ले आए थे जिसको दिखाकर उन्होंने सीता को विश्वास दिलाया कि मैं राम का ही दूत हूँ। उस मुँदरी के प्रति सीताजी के इस भावपूर्ण कथन मे भी यही बात देखने को मिलती है—

श्रीपुर मे वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की को करिहै परतीति ?

हनुमान के वेग से लका मे कूदने का दृश्य भी उन्होंने एक पक्ति में बहुत अच्छी तरह चित्रित किया है। उस समय ऐसा जान पड़ा, मानो आकाशरूपी पत्थर पर लकीर सी खिँच गई हो—लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक को।

परतु यह निरीक्षण भी इतना पूर्ण नहीं था कि बहुत दूर तक केशव की सहायता कर सकता। कई मर्मस्पर्शी घटनाओं का भी उन्होंने ऐसा वर्णन किया है जिससे मालूम होता है कि मनुष्य की मनोवृत्तियों को वे बहुत ही कम समझ पाए थे। यहाँ पर एक ही उदाहरण देंगे।

रामचद्र कपट-मृग को मारने गए थे। 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनकर सीता ने सोचा कि राम लक्ष्मण को, सहायता के लिये, बुला रहे हैं; पर लक्ष्मण ने सीता को अकेली छोड़ना ठीक नहीं समझा तब—

'राजपुत्रिका कह्यो सो और को कहै, सुनै।'

लक्ष्मण को जाना पडा। वे सीता को अभिमन्त्रित रेखा के बाहर आने की मनाही कर चले गए। कपटयोगी रावण को भिक्षा देने के लिये सीता ने लक्ष्मण की शिक्षा का उल्लघन किया और वे रावण से हरी गईं। तब वे बिलखने लगीं—

हा राम, हा रमन, हा रघुनाथ धीर।
लकाधिनाथ वश जानहु मोहिं वीर॥
हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ावहु वेगि मोहीं।
मार्तंडवश-यश की सब लाज तोहीं॥

यदि केशव मनोवृत्तियों से परिचित होते तो इस अवसर पर इस अपील में उनकी सीता अपना हृदय खोलकर रख देतीं; अपनी निस्सहाय अवस्था का जिक्र करतीं, अपने हर्ता की क्रूरता का बयान करतीं, उसे कोसतीं, केवल लकाधिनाथ कहकर न रह जातीं; लक्ष्मण को बुरा-भला कहने तथा उनका आदेश न मानने के लिये अपने आपको धिक्कारतीं, अपने पर व्यग्य छोडतीं। पर इस तार खबर मे क्या है? और कहाँ तक आत्मीयता झलकती है? 'रमन' और 'पुत्र' को छोडकर कौन बात ऐसी है जिसको आपत्ति मे पडी हुई स्त्री दूसरे के प्रति नहीं कह सकती? राम-कथा में हृदयस्पर्शी स्थलों की कमी नहीं है जिनमे कवि अपनी भावुकता के विकास का प्रकाश दिखला सके। वाल्मीकि, तुलसी, आदि केशव से पहले के कवियों ने ऐसे स्थलों का खूब उपयोग किया है। परन्तु केशव उनसे उचित लाभ नहीं उठा सके। तुलसी के राम-अयोध्या-

त्याग, वन मे पथिक राम, चित्रकूट में भरत-मिलन, लक्ष्मण-मूर्छा पर राम-विलाप आदि वर्णनों से तुलना करने पर केशव के ये वर्णन बिलकुल फीके मालूम पड़ते हैं। हाँ, सीताहरण पर राम-विलाप सचमुच कुछ अच्छा है।

निरीक्षण के इसी अभाव के कारण कभी कभी केशव को परिस्थिति का विचार भी नहीं रह जाता है। राम जब वन जाने के लिये कौशल्या से बिदा माँगते हैं, तो कौशल्या भी साथ आने को कहती हैं। राम इस पर उनसे कहते हैं कि अभी तो राजा जीते हैं, उनकी सेवा कीजिए, वन चलकर क्या करेंगी। और फिर सधवा और विधवा स्त्रियों के कर्तव्य पर एक लंबा चौड़ा व्याख्यान* दे डालते हैं, जो पात्र तथा अवसर दोनों के विचार से अनुचित है। राम के मुँह से माता को, वह भी कौशल्या सी सती को, यह पातिव्रत और वैधव्य-धर्म का उपदेश अनुचित जँचता है और अमंगल-सूचक होने के कारण अश्लील भी है।

---

* इस संक्षिप्त संस्करण में राम का यह अप्रासंगिक व्याख्यान नहीं दिया गया है। यहाँ पर बानगी के रूप में दो छंद उद्धृत करते हैं—

योग, याग, व्रत आदि जो कीजै। न्हान गान-गुन, दान जो दीजै॥
धर्म कर्म सब निष्फल देवा। होहिँ एक फल कै पति सेवा॥

वैधव्य धर्म—गान बिन, मान बिन, हास बिन जीवहीं।
तप्त नहिं खायँ, जल शीत नहि पीवहीं॥
तेल तजि, खेल तजि, खाट तजि सोवहीं।
शीत जल न्हाइँ, नहिं उष्ण जल जोवहीं॥

केशव के चरित्र-चित्रण की रेखाएँ स्पष्ट नहीं हैं। परंतु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वे विशिष्टता-शून्य है। कहीं कहीं पर उन्होंने इस संबध में अन्य रामचरितकारों से विवेक की मात्रा अधिक दिखलाई है।

उन्हे बालि-बध का अनौचित्य खटका था। उन्होंने उस पर चूना पोतने का प्रयत्न नहीं किया है, यह देखकर बड़ा आनंद होता है। एक प्रकार से स्वय राम के मुख से उन्होंने उसका अनौचित्य स्वीकार कराया है और कृष्णावतार के समय उससे उसका बदला लेने को कहा है—

'यह सॉटो लै कृष्णावतार। तब ह्वैहौ तुम ससार पार॥

भरत के सबध मे उनके राम की धारणा भी स्वाभाविक है। यद्यपि राम को भरत से कोई द्वेष नहीं है, वे खुशी से उनके लिये राज्य छोडकर वन जाने लगते हैं परतु सर्वज्ञ की भॉति वे भरत को बिल्कुल निःस्पृह नहीं समझते। उन्हे स्वभावतः भरत पर सदेह हो जाता है, लक्ष्मण से वे कहते हैं—

आइ भरत्थ कहाँ धौ करै, जिय भाय गुनौ।
जौ दुख देइँ तौ लै उरगौ, यह बात सुनौ॥

जब चित्रकूट में ससैन्य भरत को आते देख लक्ष्मण को क्रोध हुआ और उन्होंने भरत का मार डालने की इच्छा प्रकट की तो राम ने भरत की तरफ से उनका दिल साफ करने का प्रयत्न नहीं किया। स्पष्ट ही स्वय उनका दिल भरत से सशक था। उनकी शका तब मिटी जब उन्हे भरत

का वास्तविक भाव मालूम हो गया। इस समय भरत ने जो भ्रातृभाव और आत्म-त्याग प्रदर्शित किया उसने उन्हे राम का अत्यत प्रिय बना दिया। इस प्रेम में कुछ कृतज्ञता का भाव था। भरत की ओर इस झुकाव को राम ने कभी छिपाया नहीं। हनुमान भी यह बात जानता था। इसी से राम का परिचय देते हुए उसने सीता से कहा था—

अरु यदपि अनुज तीन्यो समान।
पै तदपि भरत भावत निदान॥

इनके भरत में भी लक्ष्मण के समान कुछ तीक्ष्णता है। शील का अनुरोध भी अपने पिता के सबध मे उनको यह कहने से न रोक सका—

मद्यपान-रत स्त्री-जित होई। सन्निपातयुत बातुल जोई॥
देखि देखि तिनको सब भागै। तासु बात हति पाप न लागै॥

राम के सामने जो धर्म-सकट है उसका ध्यान न रखकर वे भागीरथी-तट पर जाकर आत्म-हत्या करने का सकल्प कर लेते हैं। परतु जब गगा ने आकाशवाणी की कि तुम्हारी माता का कोई दोष नहीं है, यह इन्हीं की माया है, रावण को मारने के लिये ये वनवासी हुए हैं तब कहीं आत्महत्या से विरत हुए।

इनका अंगद भी विशिष्टता-युक्त है। उसने राम की वश्यता हृदय से नहीं की है। राम को वह वैरी ही समझता है। उनका क़ार्य वह डर के मारे करता है। जब सीता का पता नहीं चलता तो वह सोचता है—

जो घर जैए सकुन अन ता। मोहिं न छोड़ै जनक-निहंता ॥

पर जब उसने एक बार कार्य करना स्वीकार कर लिया तब वह विश्वासघात नहीं कर सकता। उसने राम के हित की हानि अपने हाथ से कभी न होने दी। रावण ने उसे बहुत लोभ दिया, पर राम का पक्ष छोडने का भाव भी उसके मन में न उठा। पर राम के राज्याभिषेक के अवसर पर अयोध्या में उसके हृदय में पितृ-वैरोद्धार की भावना जागरित होती है और वह राम और उनके सब सहायकों को युद्ध करने के लिये ललकारता है। मेरे कुल मे कोई तुमसे लडेगा तब तुम्हारा दिल मेरी ओर से साफ होगा, यह कहकर राम उसका समाधान करते हैं। अ त में लव से अ गद की लडाई होती है, और जब उसके प्राण सकट मे पड जाते हैं तब उसके हृदय मे राम के प्रति पूर्ण भक्ति का उदय होता है—

हा रघुनायक ! हौं जन तेरो। रक्षहु गर्व गयो सब मेरो ॥

रामचद्रिका मे केशव ने राम-कथा मे विशेष परिवर्तन नहीं किया है। जहाँ तक वाल्मीकि-रामायण में कथा मिलती है, वहाँ तक उन्होंने उसी का अनुसरण किया है। तुलसीदास परशुराम को धनुष टूटने पर यज्ञमडप ही में ले आए हैं; पर केशव ने वाल्मीकि के अनुसार परशुराम का आगमन बारात के प्रस्थान के बाद बतलाया है। उन्होंने रामाभिषेक ही पर कथा को समाप्त नहीं कर दिया है, बल्कि लव-कुश की कथा भी दी है। अश्वमेध यज्ञ और लव-कुश-कथा बहुत सुदर है।

अध्यात्मरामायण आदि सस्कृत ग्रथों के अनुसार केशव का मत है कि रावण ने वस्तुतः सीता का हरण नहीं किया, उसकी छायामात्र का हरण किया। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि रावण सीता के शरीर मात्र को उठा ले गया, मन तो उसका सतत राम ही के पास रहा। क्योंकि सीता ने तो सदेह अग्नि में निवास कर लिया था और इस छाया-शरीर मे अग्नि-परीक्षा के समय उसने प्रवेश किया।
ज्यों नारायण उर श्री वसंति। त्यों रघुपति उर कछु द्युति लसति॥
में सीता को अपनी विश्वासपात्रता बतलाने के उद्देश्य से राम का वर्णन करते हुए हनुमान ने जिस द्युति का उल्लेख किया वह इसी अग्नि की थी जिसे राम हृदय मे रखे हुए थे। परतु केशव ने इसका उल्लेख इस ढंग से किया है कि कथा का आनद जाता रहा है। राम सीता से कहते हैं—

चाहत हौं भुव भार हर्‍यो अब।
पावक में निज देहहिं राखहु।
छाय शरीर मृगै अभिलाषहु।

इस कथन का प्रभाव प्रबध की दृष्टि से बडा हानिकर होता है। इससे आगे की सब लीला लीला ही रह जाती है। राम का विलाप, सीता को खोजने का प्रयत्न इत्यादि सब झूठे मालूम पडने लगते हैं। इसकी सूचना और किसी तरह से दी जा सकती थी। असल में तो भगवान् को चाहिए था कि लक्ष्मी को अवतार का लक्ष्य और उसकी पूर्ति की

कार्य-प्रणाली आदि सब कुछ समझने-समझाने का काम वैकुंठ ही मे कर लेते। मनुष्य-शरीर धारण कर लेने पर—आदर्श चाहे कितना ही ऊँचा हो—व्यवहार तो मनुष्य ही जैसा करना चाहिए था।

केशव की बुद्धि प्रखर है और दरबारी होने के कारण उनका वाग्वैदग्ध्य ऊँचे दरजे का। रामचद्रिका सुंदर और सजीव वार्तालापों से भरी हुई है। लक्ष्मण-परशुराम-सवाद, अंगद-रावण-सवाद, लव-विभीषण-सवाद, सब एक से एक बढकर हैं। व्यजनाएँ कई स्थानों पर बहुत अच्छी हुई हैं पर वस्तु या अलकार की, भाव की नहीं—

कैसे बँधायो ? जो सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो।

मैंने (हनुमान ने) तेरी सोती हुई स्त्री को देखा भर था इस पाप से बाँधा गया हूँ परतु तेरी (रावण की) क्या दशा होगी जो पराई स्त्री को पाप-बुद्धि से हर लाया है; यह व्यजित है।

'है कहाँ वह वीर ?' अगद देवलोक बताइयो।
'क्यों गयो ?' 'रघुनाथ बान विमान बैठि सिधाइयो' ॥

बालि राम के बाणरूप विमान पर चढ़कर स्वर्ग चला गया। इससे यह व्यजित हुआ कि तुम भी राम से वैर कर स्वर्ग जाना चाहते हो।

नए और लोकोपकारी विचारों की भी उन्होंने खूब उद्भावना की है। इसका सबसे अच्छा एक उदाहरण उस लथाड में है जो उन्होंने लव के मुँह से विभीषण को दिलाई

है। जिस खूबी से रावण ने अ गद को फोडने का प्रयत्न किया था उससे उनकी राजनीतिज्ञता का परिचय मिलता है। अपनी इसी निपुणता के कारण वे वीरसिंहदेव का जुरमाना माफ कराने के लिये दिल्ली भेजे गए थे। राज्य-व्यवहार वे अच्छी तरह जानते थे। राज-सभा में रावण का आतक प्रतिहारी की इस झिडकी मे अ कित है—

पढ़ै विरचि मौन वेद जीव सोर छडि रे,
कुबेर बेर कै कही न जच्छ भीर मडि रे।
दिनेस जाइ दूरि बैठु नारदादि संग ही,
न बोलु चंद मदबुद्धि, इ द्र की सभा नहीं॥

रामचंद्रिका में प्रकृति-वर्णन

मनुष्य-जीवन के भीतर तो केशव की अ तर्दृष्टि कुछ दिखाई भी देती है पर प्रकृति के जितने भी वर्णन उन्होंने दिए हैं वे प्रकृति-निरीक्षण से प्रभावित होने का जरा भी परिचय नहीं देते।

क्लिष्टता की दृष्टि से लोग उनकी तुलना मिल्टन से करते है। मिल्टन से उनकी इतनी और समानता है कि उन्होंने भी प्रकृति का परिचय कवि-परपरा से पाया है। मिल्टन लावा (लार्क) पक्षी को खिड़की पर ला बैठाते हैं तो ये कहीं बिहार की तरफ विश्वामित्र के तपोवन मे—

एला ललित लवग सग पुगीफल सोहै

कह चलते है। मालूम होता है कि प्रकृति के बीच वे आँखे बंद करके जाते थे। क्योंकि प्रकृति के दर्शन से प्रकृत कवि

के हृदय की भाँति उनका हृदय आनंद से नाच नहीं उठता। प्रकृति के सौंदर्य से उनका हृदय द्रवीभूत नहीं होता। उनके हृदय का वह विस्तार नहीं है जो प्रकृति मे भी मनुष्य के सुख-दुःख के लिये सहानुभूति ढूँढ सकता है, जीवन का स्पदन देख सकता है, परमात्मा के अतर्हित स्वरूप का आभास पा सकता है। फूल उनके लिये निरुद्देश्य फूलते है, नदियाॅ बे-मतलब बहती हैं, वायु निरर्थक चलती है। प्रकृति मे वे कोई सौंदर्य नहीं देखते। बेर उन्हे भयानक लगती है, वर्षा काली का स्वरूप सामने लाती है और उदीयमान अरुणिमामय सूर्य कापालिक के शोणित भरे खप्पर का स्वरूप उपस्थित करता है। प्रकृति की सुदरता केवल पुस्तको में लिखी सुदरता है। सीताजी के वीणावादन से मुग्ध होकर घिर आए हुए मयूर की शिखा, सूए की नाक, कोकिल का कठ, हरिणी की आँखे, मराल के मद मद चाल चलनेवाले पाॅव इसलिये उनके राम से इनाम नहीं पाते कि ये चीजे वस्तुतः सुदर हैं* बल्कि इसलिये कि कवि इन्हे परपरा से सुदर मानते चले आए हैं, नहीं तो इनमे कोई सुदरता नहीं। इसी लिये सीताजी के मुख को प्रशसा करते हुए वे कह गए हैं—

* कवरी कुसुमालि सिखीन दयी। गजकुभनि हारनि शोभमयी।
मुकुता शुक सारिक नाक रचे। कटि-केहरि किंकिणि शोभ सचे।
दुलरी कल कोकिल कठ बनी। मृग खजन अजन भाँति ठनी।
नृप-हसनि नूपुर शोभ गिरी। कल हसनि कठनि कठसिरी।

देखे भावे मुख, अनदेखे कमल-चंद।

अगर केशव यह कहते कि सीताजी कमल और चद्रमा से सौंदर्य में बढ़ जाती है तो कोई बात न थी, ये चीजे तब भी सुदर रहतीं। पर यह कहकर, कि ये तभी तक सुदर लगते है जब तक देखे नहीं जाते, उन्होंने इनकी सुदरता का सर्वथा अस्वीकार कर दिया है। केशव की आँखों के साथ हृदय का संयोग न था, इसके अतिरिक्त इस पर और कोई कह ही क्या सकता है?

कल्पना की बे-पर की उडानें अलबत केशव ने खूब मारी हैं। जहाँ किसी की कल्पना नहीं पहुँच सकती वहाँ उनकी कल्पना पहुँच जाती है। उनकी उत्कट कल्पना के नमूने रामचंद्रिका के किसी भी पन्ने को उलटकर देखने से मिल सकते हैं। यहाँ एक दो ही उदाहरण काफी होंगे।

अलकार

लंका में आग लगी है—

कंचन को पघल्यो पुर पूर पयोनिधि मे पसर्यो सो सुखी ह्वै।
गंग हजार मुखी गुनि 'केसौ' गिरा मिली मानो अपार मुखी ह्वै॥
(उत्प्रेक्षा)

अग्नि के बीच बैठी हुई सीता को देखकर उद्दीप्त हुई केशव की कल्पना अत्यंत चमत्कारक है—

महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी। कि सग्राम की भूमि मे चंडिका सी।
मनो रत्न सिंहासनस्था सची है। किधौं रागिनी राग पूरे रची है।
(सदेह + उत्प्रेक्षा)

पुस्तक मे आगे पढते चले जाइए, सारा वर्णन चमत्कार से परिपूर्ण मिलेगा।

पर इनकी कल्पना मस्तिष्क की उपज मात्र है, हृदय-जात नहीं। इसी से कभी कभी इनकी कल्पना ऐसे दृश्यों को अलकार रूप मे सामने लाती है जिनसे प्रस्तुत वस्तु का असली स्वरूप कुछ भी प्रत्यक्ष नहीं होता, पर जिसे प्रत्यक्ष करना अलकारों का मुख्य उद्देश्य है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत वस्तु के बीच केवल किसी बात में बाहरी समानता ही नहीं होनी चाहिए, उन दोनों को एक समान भावनाओं का उद्भावक भी होना चाहिए। यदि आप किसी मुलायम कपड़े की श्वेतता की उपमा देते हुए बरसात की धुली हड्डी से उसकी समानता करना चाहे तो कहाँ तक उसके प्रति लोगों की रुचि को आकर्षित कर सकेगे? हाँ, मक्खन के साथ उसकी समानता करने से अवश्य यह काम हो सकता है। 'मक्खनजीन' नाम रखनेवाले ने अलकार की सब आवश्यकताओं का ध्यान रखा है। मक्खन कोमल और श्वेत होने के साथ साथ प्रिय वस्तु है जब कि हड्डी कठोर तो है ही, घृणा भी पैदा करती है। केशव का बालारुण सूर्य को देखकर यह सदेह करना कि—

कै श्रोणितकलित कपाल यह किल कपालिका काल को।

हड्डीवाली उपमा ही के समान है।

इसके साथ सदेहालकार के जो और पक्ष हैं और जो एक उत्प्रेक्षा है वे इसके विरोध में कितने मनोरम लगते हैं—

अरुणगात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ भय।
मानहुँ केशवदास कोकनद कोक प्रेममय॥
परिपूरण सिंदूर पूर कैधौं मंगल-घट।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो मानिक मयूष पट॥
कै श्रोणितकलित कपाल यह किल कपालिका काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को॥

बस, एक पंक्ति ने सारा गुड गोबर कर दिया है! कहीं कहीं तो प्रस्तुत वस्तु ऐसे अरुचिकर रूप मे सामने आती है कि केशव की रुचि पर तरस आए बिना नहीं रहता। वे एक जगह रामचद्र की उपमा उल्लू से दे गए हैं—

वासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत।

और कहीं कहीं पर प्रस्तुत और अप्रस्तुत वस्तु में कुछ भी समानता नहीं होती, केवल शब्द-साम्य के बल पर अलंकार गढ लिए गए हैं। पंचवटी का यह वर्णन लीजिए—

पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो।
है सुभगा सम दीपति पूरी। सिंदुर की तिलकावलि रूरी।
राजति है यह ज्यों कुलकन्या। धाइ विराजति है सँग धन्या।
केलिथली जनु श्री गिरिजा की। शोभ धरे सितकठ प्रभा की।

अब बताइए अर्जुन से अर्जुन के पेड का, भीम से अम्ल-वेतस का, सिंदूर के तिलक से सिंदूर के पेड का और दूध पिलानेवाली धाय से धाय के पेड का क्या सादृश्य है? सिवा इसके कि कोश मे एक ही शब्द दोनों का पर्यायवाची मिलता

है। इसे यदि किसी का जी खिलवाड कहने का करे तो उसका इसमें क्या दोष ? इस शब्दसाम्य के कारण कहीं-कहीं पर तो रामचंद्रिका के पद्य बिलकुल पहेली हो गए हैं। जहाँ जहाँ उन्होंने सभग-पद-श्लेष के द्वारा एक ही पद्य में दो-दो तीन-तीन अर्थ ठूँसने का प्रयत्न किया है वहाँ भी यही हाल हुआ है। 'जाको देन न चहै बिदाई, पूछै केशव की कविताई' का यही रहस्य है। सदेह और उत्प्रेक्षाएँ उनके हाथ पर बड़ी खिलती हैं। इनके एक-एक उदाहरण हम ऊपर दे आए हैं। बहुधा वे इन दोनों का संकर कर जाते हैं, जो भद्दा भी नहीं लगता। 'परंतु इनका सबसे प्रिय अलंकार परिसंख्या है जिसके आकर्षण के आगे राम-कहानी के प्रसिद्ध लेखक प० सुधाकर द्विवेदी भी न ठहर सके। रामचद्रिका में परिसख्या का बाहुल्य है। यहाँ पर एक ही उदाहरण देंगे—

मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम-हुताशन-धूम 'नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिलगति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कविकुल के जी में॥

केशव सस्कृत के विद्वान् थे। उनको इस बात का गर्व था कि हमारे घर के नौकर भी 'भाषा' बोलना नहीं जानते और इस बात का खेद कि हमें भाषा में काव्य करना पड रहा है। इसलिये हिंदी में काव्य करते हुए सस्कृत काव्यों का अपने आप उनकी

संस्कृत की छाया

लेखनी के मुख पर आ जाना स्वाभाविक था। परतु रामचंद्रिका में इससे आगे बढ़कर संस्कृत काव्यो के कई अंशों का शब्दशः अनुवाद भी मिलता है। ऐसे अधिकांश अंश कादंबरी से लिए गए हैं। नगर, आश्रम इत्यादि के जितने लबे लबे वर्णन मिलते हैं, उन सबमे कादंबरी की छाया है। सवादों में प्रसन्नराघव तथा हनुमन्नाटक से कम अंश नहीं लिया गया है। भास के बालचरित और कालिदास के रघुवंश आदि काव्यों से भी कुछ सहायता ली गई है। सस्कृत से भाव लेना बुरा नहीं है। परंतु कहीं कहीं पर केशव ने उनको बिना ग्रंथ के उपयुक्त बनाए ही ले लिया है जिससे वे सौंदर्य-वृद्धि करने के बदले उसमें बाधा उपस्थित करते हैं।

छद

छंद का कविता के साथ बहुत घनिष्ठ सबध है। बिना छद के भी कविता संभव है, किंतु साधारण व्यवहार में छंद के ही संयोग में कविता का दर्शन हुआ करता है। इसी से साधारण बोलचाल मे बहुधा गलती से पद्य और कविता शब्द एक दूसरे के पर्याय के रूप मे गृहीत होते हैं। रामचंद्रिका में छंद की जो अनेक-रूपता दिखलाई देती है, वह शायद ही और किसी काव्य में मिले। हम उसे ऊपर छदों का अजायबघर कह आए हैं। जिन छंदों के नाम कहीं नहीं सुनाई देगे वह उसमे मिलेंगे। मोटनक, सोमराजी, कलहंस, चित्रपदा, निशिपालिका आदि छंद-जगत् के अजनवी से अजनवी नाम उसमें दिखाई पडते हैं।

दडक (कवित्त) हिंदी का एक सु-परिचित छंद है, परंतु उसके भी जगमोहन, अनंगशेखर, मत्तमातग, लीलाकरन आदि ऐसे उपभेद रामचंद्रिका में मिलते हैं, जो बिलकुल अपरिचित लगते है। बहुत से छंद ऐसे हैं जिनको हम या तो पिंगल ग्रंथों में ही पाते है, या इसी काव्य मे। कुछ तो केशव के ही निर्मित किए हुए हैं जिनमें से एकाध निस्संदेह बहुत सुंदर और काव्योपयोगी हैं, उदाहरण के लिये गगोदक और पद्मावती; पहला सवैए के मेल का है और दूसरा त्रिभगी के। यही नहीं, लबे से लंबे और छोटे से छोटे सब छंद उसमें पाए जाते हैं। ग्रथारंभ में एकाक्षरी से लेकर क्रम से अष्टाक्षरी तक छंद दिए हुए हैं। सी। धी॥ री। धी॥ यह श्रीछंद है, राम। नाम॥ सत्य। धाम॥ सार छद, दुख क्यों। हरि है॥ हरि जू। हरि है॥ रमण छंद, बरणिवो। बरण सो॥ जगत को। शरण सो॥ तरणिजा, सुखकंद हैं। रघुनंद जू॥ जग यों कहै। जगवद जू॥ प्रिया, गुनी एक रूपी। सुनो वेद गावैं॥ महादेव जाको। सदा चित्त लावै॥ सोमराजी, विरंचि गुण देखै। गिरा गुणनि लेखै॥ अनत मुख गावै। विशेषहि न पावै॥ कुमार ललिता और भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कहै सुनै॥ न रामदेव गाइहै। न देवलोक पाइहै॥ नागस्वरूपिणी।

प्रबध-काव्य मे इतने छोटे-छोटे छदों की अनुपयुक्तता स्पष्ट है। इनकी असल जगह पिंगल के ही ग्रंथों मे हो सकती है। फिर भी इनको इसमे जगह मिली है। कवित्त, सवैए, त्रिभगी

आदि हिंदी के अपने छंद हैं। इनके भेदोपभेदों के दर्शन कराने के लिये केशव का आभार मानना चाहिए। यदि वे इन्हीं का अथवा अन्य छंदों का भी सही, एक एक करके कुछ दूर तक क्रम रखते तो प्रबंध की दृष्टि से भी बडा अच्छा होता। परंतु केशव को इस बात का ध्यान ही न था।

काव्य की सौंदर्य-वृद्धि में भाषा का भी विशेष हाथ रहता है। काव्य की और साधारण गद्य की भाषा के मूल तत्त्वों मे चाहे कुछ अंतर न हो, पर दोनों एक होने पर भी एक नहीं होतीं। काव्य की

भाषा

परंपरा भाषा को एक विशेष प्रकार की मिठास दे देती है जो साधारण भाषा मे नहीं मिलती। इसी मिठास के अभाव से लोग बहुत दिन तक यह मानने को तैयार नहीं थे कि खड़ी बोली में भी कविता हो सकती है। ब्रजभाषा, जो केशव के समय मे काव्य की सामान्य भाषा थी और जिसमें स्वय केशव ने काव्य किया, काव्य के लिये विशेष रूप से ढल चुकी थी। परतु केशव ने इस ढले हुए रूप को नहीं लिया। उनकी ब्रजभाषा बहुत कुछ ऊबड-खाबड है। उसमे स्थान-स्थान पर बुंदेलखडी का पुट मिला हुआ है। यद्यपि मरूकर (मुश्किल से), उपदि (बडों की इच्छा के विरुद्ध स्वच्छंद भाव से), उरगना (स्वीकार करना), गलसुई (गाल के नीचे रखने की तकिया) आदि प्रांतीय शब्द कर्ण-कटु नहीं हैं फिर भी भाव-ग्रहण मे बाधा उपस्थित करते हैं। गेंडुआ (तकिया) की

तरह के शब्दों का तो कुछ कहना ही नहीं है। कहीं कहीं तो उनका बुंदेलखंडीपन उनकी भाषा को प्राकृत के जैसा रूप दे देता है। बियो (दूसरा) आदि प्राकृत के शब्द भी उनमे मिलते हैं। निरय, यत्र, यदा आदि हिंदी मे अप्रयुक्त संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी उनकी भाषा की रुखाई को बढ़ाने में ही मदद करता है। निजेच्छया, स्वलीलया, लीलयैव, हरिणाधिष्ठित के सदृश संस्कृतविभक्त्य‌ंत तथा समस्त पद भी यही काम करते हैं। उनकी भाषा मधुर भावों की अपेक्षा तीक्ष्ण भावों को प्रकट करने के लिये अधिक उपयुक्त है। इसी से उनकी वीर-दर्प-पूर्ण उक्तियाँ बहुत जँचती हैं। व्याकरण की भी उन्होंने सर्वत्र रक्षा नहीं की है। 'बाण हमारेन के तन त्राण' में 'बाण' के वचन-चिह्न और विभक्ति 'हमारे' पर लगकर दुहरे बहुवचन और षष्ठी का दृश्य दिखा रहे हैं। कहीं कहीं पर वाक्य-रचना बिलकुल अव्यवस्थित है। 'राज देहु जो वाकी तिया को' (प्रथम संस्करण ९५ पृष्ठ) में अर्थ बिलकुल बदल गया है। कहना चाहते थे, 'सुग्रीव को अगर उसका राज्य और उसकी स्त्री दे दो' पर अर्थ निकलता है कि 'उसकी स्त्री को अगर राज्य दे दो' परतु शायद यह केशव की गलती न हो, 'जो' के स्थान पर 'दै' पाठ भी संभव है जिससे यह दोष नहीं रहने पाता। इस सस्करण में यही पाठ रखा गया है। कहीं कहीं पर कहने का ढग बिलकुल बेढंगा है। विवाहोपरात शिष्टाचार में जनक अपने समधी से कहते हैं—'दुख देख्यो ज्यों काल्हि

त्यों आजहु देखो'। 'कष्ट उठाना' मुहावरा है पर 'दुःख देखना' अवसर के अनुसार शिष्ट उक्ति नहीं मालूम पडती। परशुराम-क्रोध के लिये अमगल-लक्षण उपस्थित करना ही अभीष्ट हो तो बात दूसरी है। 'दुःख देखि कै देखिहौ तव मुख आनँदकद' में अलबत 'दुःख देखना' अनुचित नहीं लगता है क्योंकि वह वास्तविक विद्यमान दुःख की ओर सकेत करता है। सस्कृत के अनुरूप होने पर भी हिंदी मे 'देवता' का स्त्रीलिंग में प्रयोग विलक्षण है। 'वेगि दै' मे 'दै' व्यर्थ मालूम पड़ता है पर इसकी पुष्टि मे बुंदेलखंडीपन पेश किया जाता है।

उपसंहार

संक्षेप मे, अपने निरीक्षण से एकत्र की हुई सामग्री को विचारों के पुष्ट साँचे में ढालकर, उसे कल्पना का सौंदर्य देकर, तथा रागात्मिकता का उसमे जीवन फूँककर ही सफल कवि कविता का जीता-जागता मनोहर रूप खडा कर सकता है। जिसमें ये सब बातें न होंगी उसे यद्यपि हम कवि कहने से इनकार न कर सके तथापि सफल कवि कहने को बाध्य नहीं किए जा सकते। केशवजी मे विचारों की पुष्टता है, कल्पना की उड़ान है, पर यद्यपि संवेदनशीलताजन्य रागात्मिकता का सर्वथा अभाव नहीं है फिर भी प्राय: अभाव ही सा है। निरीक्षण भी उनका एकदेशीय है जो मनुष्य के जीवन-व्यवहार ही से संबंध रखता है, मनुष्य की मनोवृत्तियों पर उनका यथेष्ट अधिकार नहीं है और प्रकृति-निरीक्षण तो उनमें है ही नहीं। भाषा भी उनकी

काव्योपयोगी नहीं है; माधुर्य और प्रसाद गुण से तो जैसे वे खार खाए बैठे थे। परंतु उनके नाम और उनकी करामात का ऐसा जादू है कि उन्हें महाकवि केशवदास कहे बिना जी ही नहीं मानता, यद्यपि कविता के प्रजातंत्र में 'महा' और 'लघु' के विचार के लिये स्थान नहीं है, क्योंकि कविता यदि सच्ची कविता है तो, चाहे वह एक पंक्ति हो या एक महाकाव्य, समान आदर की अधिकारिणी है और तदनुसार उनके रचयिता भी; वैसे तो महाकाव्य लिखनेवाले सैकड़ों महाकवि निकल आयँगे। परंतु यदि आदत से विवश होकर इस उपाधि का साहित्य-साम्राज्य मे प्रयोग आवश्यक ही हो तो उसे तुलसी और सूर के लिये सुरक्षित रखना चाहिए। हाँ, हिंदी के नवरत्नों में (कविरत्नों मे नहीं) केशव का स्थान वाद-विवाद की सीमा के बाहर है क्योंकि साहित्य-शास्त्र की गंभीर चर्चा के द्वारा उन्होंने हिंदी के साहित्यक्षेत्र में एक नवीन ही मार्ग खोल दिया, जिसकी ओर उनसे पहले लोगों का बहुत कम ध्यान गया था।

पीतांबरदत्त बड़थ्वाल

रामचंद्रिका

कांड-सूची

रामचंद्रिका

बाल कांड

गणेश-वंदना

[मनहरण छंद]

बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारै सब काल
कठिन कराल त्यों अकाल दीह[1] दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरि कै कलंक अंक भवशीश-शशि सम,
राखत है केशोदास दास के वपुख को।
साँकरे[2] की साँकरन[3] सनमुख होत तोरै,
दशमुख[4] मुख जोवैं गजमुख मुख को॥ १॥

सरस्वती-वंदना

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भयी।

---

(१) दीह = दीर्घ। (२) साँकरे = संकट, संकीर्ण (सँकरा) समय। (३) साँकरन = शृंखलाओं को। (४) दशमुख = दशों दिशाएँ, अथवा ब्रह्मा—४ मुख, विष्णु—१ मुख; महेश—५ मुख।

देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब, कहि न केई लयी।
भावी, भूत, वर्त्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहूँ न बखानी काहू पै गयी।
वर्णी पति चारि मुख, पूत वर्णी पाँच मुख,
नाती वर्णी षट मुख, तदपि नयी नयी ॥ २ ॥

राम-वंदना

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि-
पूरण बतावै न बतावै और उक्ति को।
दरसन देत, जिन्हे दरसन समुझैं न,
'नेति नेति' कहै वेद छाँड़ि आन युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि, गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को ॥ ३ ॥

कवि-परिचय

[सुगीत छद]

सनाढ्य जाति गुनाढ्य है, जग सिद्ध शुद्ध स्वभाव।
कृष्णदत्त प्रसिद्ध है, महि मिश्र पडितराव ॥
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै जिन जानियो मत साध ॥ ४ ॥

[दो०] उपज्यो तेहि कुल मदमति, सठ कवि केशवदास।
रामचद्र की चद्रिका, भाषा करी प्रकास ॥५॥
सोरह सै अट्ठावनै, कार्तिक सुदि बुधवार।
रामचद्र की चद्रिका, तब लीन्हों अवतार ॥६॥

राम-महिमा

[षट्पद]

बोलि न बोल्यो बोल, दयो फिर ताहि न दीन्हों।
मारि न मार्‌यो शत्रु, क्रोध मन वृथा न कीन्हों।
जुरि न मुरे सग्राम, लोक की लीक न लोपी।
दान, सत्य, सम्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी।
मन लोभ-मोह-मद-काम-वश भये न केशवदास भणि।
सोइ पूरब्रह्म श्रीराम है अवतारी अवतार मणि ॥७॥

[चतुष्पदी छद]

जिनको यश-हसा जगत प्रशसा मुनिजन-मानस रता।
लोचन अनुरूपनि श्याम स्वरूपनि अंजन अ जित सता।
कालत्रयदर्शी निर्गुणपर्शी होत विलब न लागै।
तिनके गुण कहिहौं, सब सुख लहिहौ पाप पुरातन भागै ॥८॥

[दो०] जागति जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छद।
रामचद्र की चद्रिका वरणत हौं बहु छद ॥९॥

[रोला छद]

शुभ सूरज-कुल-कलश नृपति दशरथ भये भूपति।
तिनके सुत भये चारि चतुर चितचारु चारुमति।

रामचंद्र भुवचद्र भरत भारत-भुव-भूषण।
लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषण ॥१०॥

[घत्ता छंद]

सरयू सरिता तट नगर बसै, अवधनाम, यश-धाम धर।
अघओघ-विनाशी सब पुरवासी, अमरलोक मानहुँ नगर ॥११॥

विश्वामित्र आगमन

[षट्पद]

गाधिराज को पुत्र, साधि सब मित्र शत्रु बल।
दान कृपान विधान वश्य कीन्हों भुवमडल।
कै मन अपने हाथ, जीति जग इंद्रियगन अति।
तप बल याही देह भये क्षत्रिय ते ऋषिपति।
तेहि पुर प्रसिद्ध केशव सुमति काल अतीतागतनि गुनि।
तहँ अद्भुत गति पगु धारियो विश्वामित्र पवित्र मुनि ॥१२॥

सरयू-वर्णन

[प्रज्झटिका छंद]

पुनि आये सरयू सरित तीर।
तहँ देखे उज्ज्वल अमल नीर।
नव निरखि निरखि द्युति गति गँभीर।
कछु बरणन लागे सुमति धीर ॥ १३ ॥
अति निपट कुटिल गति यदपि आप।
तउ देत शुद्ध गति छुवत आप।

कछु आपुन अध अध गति चलति ।
फल पतितन कहँ ऊरध फलति ॥१४॥
मदमत्त यदपि मातंग संग ।
अति तदपि पतितपावन तरंग ।
बहु, न्हाइ न्हाइ जेहि जल सनेह ।
सब जात स्वर्ग सूकर[1] सुदेह ॥१५॥

गजशाला-वर्णन

[नवपदी छंद]

जहँ तहँ लसत महामदमत्त । वर बारन बार न दलदत्त[2]
अंग अंग चरचे अति चंदन । मुंडन भुरके देखिय बंदन[3] ॥१६॥
[दो०] दीह दीह दिग्गजन के, केशव मनहुँ कुमार ।
दीन्हे राजा दशरथहिं, दिगपालन उपहार ॥१७॥

बाग-वर्णन

[अरिल्ल छंद]

देखि बाग अनुराग उपज्जिय ।
बोलत कलध्वनि कोकिल सज्जिय ।
राजति रति की सखी, सुवेषनि ।
मनहुँ बहति, मनमथ संदेशनि ॥१८॥

---

(१) सूकर = सुअर, सुकर्म करनेवाले । (२) दत्त = दलने में
(३) बंदन = रोली ।

फूलि फूलि तरु, फूल बढ़ावत।
मोदत[1] महा मोद उपजावत।
उड़त पराग न, चित्त उडावत।
भ्रमर भ्रमत नहिं, जीव भ्रमावत ॥१९॥

[पादाकुलक छंद]

शुभ सर शोभै। मुनिमन लोभै।
सरसिज फूले। अलि रस भूले॥
जलचर डोलैं। बहु खग बोलैं।
बरणि न जाहीं। उर अरुझाहीं ॥२०॥

[हाकलिका छंद]

संग लिये ऋषि शिष्यन घने। पावक से तपतेजनि सने।
देखत सरिता उपवन भले। देखन अवधपुरी कहँ चले ॥२१॥

अवधपुरी-वर्णन

[मधुभार छंद]

ऊँचे अवास। बहु ध्वज प्रकास।
सोभा विलास। सोभै अकास ॥२२॥

[आभीर छंद]

अति सुंदर अति साधु। थिर न रहत पल आधु।
परम तपोमय मानि। दंडधारिनी जानि ॥२३॥

---

(१) मोदत = महकते हुए।

[हरिगीत छन्द]

शुभ द्रोणगिरिगण शिखर ऊपर उदित औषधि सी गनौ।
बहु वायु वश वारिद बहोरहि, अरुझि दामिनि द्युति मनौ॥
अति किधौं रुचिर-प्रताप-पावक प्रगट सुरपुर को चली।
यह किधौं सरित सुदेश मेरी करी दिवि खेलति भली॥२४॥

[दो०] जीति जीति कीरति लई, शत्रुन की बहु भाँति।
पुर पर बाँधी सोभिजै, मानो तिनकी पाँति॥२५॥

[त्रिभंगी छन्द]

सम सब घर सोभैं, मुनि मन लोभैं,
रिपुगण छोभैं, देखि सबै।
बहु दुंदुभि बाजैं, जनु घन गाजैं,
दिग्गज लाजैं, सुनत जबै॥
जहँ तहँ श्रुति पढ़हीं, विघन न बढ़हीं,
जै जस मढ़हीं, सकल दिशा।
सबई सब विधि छम, बसत यथाक्रम,
देवपुरी सम दिवस निशा॥२६॥

[दण्डकला छन्द]

कवि[१] कुल, विद्याधर[२], सकल कलाधर[३],
राजराज[४] वर वेष बने।

---

(१) कवि = कवि, शुक्र। (२) विद्याधर = विद्वान्; गंधर्व। (३) कलाधर = कलाविज्ञ, चंद्रमा। (४) राजराज = बड़े बड़े राजा; कुबेर।

गणपति[१] सुखदायक, पशुपति[२] लायक,
सूर[३] सहायक कौन गने ।
सेनापति[४], बुधजन[५], मगल[६], गुरु[७] गण
धर्मराज[८] मन बुद्धि घनी ।
बहु शुभ मनसाकर[९] करुणामय अरु
सुरतरंगिनी[१०] सोभसनी ॥२७॥

[हीरक छंद]

पंडितगण मंडितगुण, दंडित-मति देखिए ।
क्षत्रिय वर धर्म-प्रवर क्रुद्ध समर लेखिए ।
वैश्य सहित-सत्य, रहित-पाप, प्रगट मानिए ।
शूद्र सकति, विप्र भगति, जीव जगत जानिए ॥२८॥

[सिंहविलोकित छंद]

अति मुनि तन मन, तहँ मोहि रह्यो ।
कछु बुधिबल वचन न जाइ कह्यो ।
पशु पक्षि नारि नर, निरखि तबै ।
दिन, रामचंद्र गुण गनत सबै ॥२९॥

---

(१) गणपति = गण का स्वामी; गणेश । (२) पशुपति = घोड़े हाथियो के रक्षक; महादेव । (३) सूर = योधा, सूर्य । (४) सेनापति = सेनानायक, कार्त्तिकेय । (५) बुध = बुध नामक नक्षत्र; पंडित । (६) मंगल = ग्रह का नाम, कल्याणमय । (७) गुरु = शिक्षक, बृहस्पति । (८) धर्मराज = न्यायाधीश; यम । (९) मनसाकर = मनचाहा दान देनेवाले, कामधेनु अथवा कल्पवृक्ष । (१०) सुरतरंगिणी = सरयू, स्वर्गंगा, मंदाकिनी ।

[मरहट्टा छद]

अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंतामणि नारि[1] ।
बहु सत मख धूमनि धूपित अगनि हरि की सी अनुहारि ॥
चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि केशवदास निहारि ।
जनु विश्वरूप को अमल आरसी रची विरंचि विचारि ॥३०॥

[सो०] जग यशवत विशाल, राजा दशरथ की पुरी ।
चद्र सहित सब काल, भालथली जनु ईश की ॥३१॥

[कुडलिया]

पडित अति सिगरी पुरी, मनहु गिरा गति गूढ ।
सिंहन युत जनु चडिका, मोहति मूढ अमूढ ॥
मोहति मूढ अमूढ, देव सँगऽदिति सी सोहै ।
सब शृगार सदेह, मनो रति मन्मथ मोहै ॥
सब शृगार सदेह सकल सुख सुखमा मडित ।
मनो शची विधि रची, विविध विधि बरणत पडित ॥३२॥

[काव्य छद]

मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय ।
होम-हुताशन-धूम नगर एकै मलिनाइय ॥
दुर्गति दुर्गन ही जो, कुटिलगति सरितन ही मे ।
श्रीफल को अभिलाष, प्रगट कविकुल के जी मे ॥३३॥

[दो०] अति चचल जहँ चलदलै, विधवा बनी न नारि ।
मन मोह्यो ऋषिराज को, अद्भुत नगर निहारि ॥३४॥

---

(१) नारि = समूह ।

सो०] नागर नगर अपार, महामोहतम मित्र से।
तृष्णालता कुठार, लोभसमुद्र अगस्त्य से ॥३५॥
दो०] विश्वामित्र पवित्र मुनि, केशव बुद्धि उदार।
देखत शोभा नगर की, गए राजदरबार ॥३६॥
शोभित बैठे तेहि सभा, सात द्वीप के भूप।
तहँ राजा दशरथ लसै, देवदेव अनुरूप ॥३७॥
देखि तिन्हैं तब दूर ते, गुदरानो[1] प्रतिहार।
आये विश्वामित्रजू, जनु दूजो करतार ॥३८॥
उठि दौरे नृप सुनत ही, जाइ गहे तब पाइ।
लै आये भीतर भवन, ज्यौं सुरगुरु सुरराई ॥३९॥
ो०] सभा मध्य बैताल[2], ताहि समय सो पढ़ि उठ्यो।
केशव बुद्धि विशाल, सुंदर सूरो भूप सो ॥४०॥

[घनाक्षरी]

त—विधि के समान है, विमानीकृत[3] राजहस[4],
विविध विबुध[5] युत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति, सातौं दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा[6] को बल है।

---

(१) गुदरानो = निवेदन किया। (२) बैताल = भाट, वंदी।
) विमानीकृत = विमान बनाए हुए हैं (अधीन रखे हुए हैं),
-विहीन किए हुए हैं। (४) राजहस = मराल पक्षी, राजाओं के
अर्थात् राजा। (५) विबुध = देवता, पंडित। (६) सुदक्षिणा =
दिलीप की स्त्री; अच्छी दक्षिणा।

सागर उजागर की बहु वाहिनी[1] को पति,
छनदानप्रिय[2] किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भगीरथपथगामी[3], गंगा कैसो जल है ॥४१॥

[दो०] यद्यपि ईंधन जरि गये अरिगण केशवदास।
तदपि प्रतापानलन के पल पल बढ़त प्रकाश ॥४२॥

[तोमर छंद]

बहु भाँति पूजि सुराइ। कर जोरिकै परे पाइ॥
हँसिके कह्यो ऋषिमित्र[4]। अब बैठ राजपवित्र ॥४३॥
मुनि—सुनु दानमानसहंस। रघुवंश के अवतंस॥
मन माँह जो अति नेहु। इकु बस्तु माँगहिं, देहु ॥४४॥

[दोधक छंद]

राम गये जब तें वन माहीं। राक्षस वैर करैं बहुधाहीं॥
रामकुमार हमैं नृप दीजै। तौ परिपूरण यज्ञ करीजै ॥४५॥

[तोटक छंद]

यह बात सुनी नृप नाथ जबै।
शर से लगे आखर चित्त सबै।

---

(१) वाहिनी = नदी, सेना। (२) उत्सव के अवसर पर दान देना प्रिय है जिसको (दशरथ); क्षण क्षण (समय) का दान देना प्रिय है जिसको (सूर्य) अथवा क्षणदा (रात्रि) नहीं है प्रिय जिसको (सूर्य्य), क्षण (तत्काल) दान देना प्रिय है जिसको (दशरथ), क्षणदा = क्षण (विराम वा विश्राम) देनेवाली, रात्रि। (३) भगीरथपथ = कुलोद्धार के लिये अनवरत परिश्रम, जिस मार्ग से भगीरथ के रथ के पीछे पीछे गंगा चली। (४) ऋषिमित्र = ऋषियों में सूर्य्य के समान, ऋषिश्रेष्ठ।

मुख ते कछु बात न जाय कही।
अपराध विना, ऋषि देह दही ॥४६॥
राजा—अति कोमल केशव बालकता।
बहु दुष्कर राक्षस-घालकता।
हमहीं चलिहैं ऋषि संग अबै।
सजि सैन च चतुरंग सबै ॥४७॥

[षट्पद]

विश्वामित्र–जिन हाथन हठि हरषि हनत हरिणी रिपु-नंदन।
तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयंदन।
जिन बेधत सुख लक्ष, लक्ष, नृपकुँवर कुँवरमनि।
तिन बाणनि बाराह बाघ मारत नहिं सिंहनि।
नृपनाथनाथ दशरथ सुनिय, अकथ कथा जनि मानिए।
मृगराज,राजकुलकलश अब, बालक वृद्ध, न जानिए ॥४८॥

[मोदक छंद]

राजा—मैं जो कह्यो ऋषि देन, सो लीजिय।
काज करो, हठ भूलि न कीजिय॥
प्राण दिये, धन जाहिं दिये सब।
केशव राम न जाहि दिये अब ॥४९॥
ऋषि—राज तज्यो धन धाम तज्यो सब।
नारि तजी, सुत सोच तज्यो तब॥
आपनपौ जो तज्यौ, जगबंद है।
सत्य न एक तज्यौ हरिचंद है॥५०॥

[दो०] जान्यो विश्वामित्र के, कोप बढ्यो उर आइ।
राजा दशरथ सों कह्यो, वचन वशिष्ठ बनाइ ॥५१॥

[षट्पद]

वशिष्ठ—इनहीं के तपतेज यज्ञ की रक्षा करिहैं।
इनहीं के तपतेज सकल राक्षस बल हरिहैं।
इनहीं के तपतेज तेज बढिहै तन तूरन।
इनहीं के तपतेज होहिंगे मंगल पूरन।
कहि केशव जैयुत आइहैं इनहीं के तपतेज घर।
नृप बेगि राम लक्ष्मण दोऊ सौंपौ विश्वामित्र कर ॥५२॥

[दो०] नृप पै वचन वसिष्ठ को, कैसे मेट्यो जाइ।
सौंप्यो विश्वामित्र कर, रामचंद्र अकुलाइ ॥५३॥

[पंकजवाटिका छंद]

राम चलत नृप के युग लोचन।
वारिभरित भै वारिदरोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं।
केशव उठि गै भीतर भौनहिं ॥५४॥

[चामर छंद]

वेद मंत्र तंत्र शोधि, अस्त्र शस्त्र दै भले।
रामचंद्र लक्ष्मणै सो विप्र छिप्र लै चले।
लोभ छोभ मोह गर्व काम कामना हयी।
नींद, भूख, प्यास, त्रास, वासना सबै गयी ॥५५॥

[निशिपालिका छंद]

कामवन राम सब बास तरु देखियो ।
नैन सुखदैन मन मैनमय लेखियो ।
ईश जहँ कामतनु कै अतनु डारियो ।
छोडि वह यज्ञथल केशव निहारियो ।।५६।।

[दो०] रामचंद्र लक्ष्मण सहित, तन मन अति सुख पाइ ।
देख्यो विश्वामित्र को, परम तपोवन जाइ ।।५७।।

तपोवन-वर्णन

[षट्पद]

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर ।
मंजुल बंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर ।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै ।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै ।
शुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन ।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र बन ।।५८

[सुप्रिया छंद]

कहुँ द्विजगण मिलि सुख श्रुति पढ़हीं ।
कहुँ हरि हरि हर हर रट रटहीं ।
कहुँ मृगपति मृगशिशु पय पियहीं ।
कहुँ मुनिगण चितवत हरि हियहीं ।।५९।।

[नाराच छंद]

विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिए।
अदीयमान दुःख, सुःख दीयमान जानिए।
अदण्डमान दीन, गर्व दण्डमान भेदवै।
अपट्टमान पापग्रथ, पट्टमान वेदवै ॥६०॥

[चंचला]

रक्षिबे को यज्ञथल बैठे वीर सावधान।
होन लागे होम के जहाँ तहाँ सबै विधान।
भीम भाँति ताड़का सो भंग लागि करन आइ।
बान तानि, राम पै न नारि जानि छाँड़ि जाइ ॥६१॥
ऋषि–[सो०] कर्म करति यह घोर, विप्रन को दसहू दिशा।
मत्त सहस गज जोर, नारी जानि न छाँडिए ॥६२॥
[दो०] द्विजदोषी न विचारिए, कहा पुरुष कह नारि।
राम विराम न कीजिए, बाम ताड़का तारि ॥६३॥

ताड़का-सुबाहु-वध

[मरहट्टा छंद]

यह सुनि गुरुबानी धनु गुन तानी, जानी द्विज दुखदानि।
ताड़का सँहारी, दारुण भारी, नारी अति बल जानि॥
मारीच बिडार्‌यो, जलधि उतार्‌यो, मार्‌यो सबल सुबाहु।
देवनि गुन पर्ख्यो, पुष्पनि बर्ख्यो, हर्ख्यो अति सुरनाहु ॥६४॥

दो०] पूरण यज्ञ भयो जहीं, जान्यो विश्वामित्र।
धनुपयज्ञ की शुभ कथा, लागे सुनन विचित्र ॥६५॥

विप्र-कथित स्वयंवर-कथा

खडपरस[१] को सोभिजै, सभामध्य कोदंड।
मानहुँ शेष (अशेष धर, धरनहार) बरिवड ॥६६॥

[सवैया]

शोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनौ वसुधा मे सुधारि सुधाधरमडल मडि जोन्हाई।
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यों[२] जनु देवसभा शुभ सीयस्वयवर देखन आई ॥६७॥

सो०] सभामध्य गुणग्राम, बदी सुत द्वै सोभहीं।
सुमति विमति यह नाम, राजन को वर्णन करै ॥६८॥

सुमति–[दो०] को यह निरखत आपनी, पुलकित बाहु विशाल।
सुरभि[३] स्वयवर जनु करी, मुकुलित शाख रसाल ? ॥६९॥

विमति–[सो०] जेहि यश-परिमल मत्त, चंचरीक-चारण फिरत।
दिसि विदसन अनुरक्त, सो तौ मल्लिकापीडनृप[४] ॥७०॥

सुमति–[दो०] जाके सुखमुख[५] वास ते, वासित होत दिगत।
सो पुनि कहु यह कौन नृप, शोभित शोभ अनत ? ॥७१॥

---

(१) खडपरस = महादेव। (२) स्यो = सहित। (३ सुरभि = बसत। (४) मलिकापीडनृप = मल्लिक नामक जाति अथवा पहाडी देश का शिरोभूषण राजा; मल्लिका पुष्प से निर्मित शिरोभूषण जिसका वह राजा। (५) सुखमुख = सहज।

विमति-[सो०] राजराजदिगबाम[1], भाल लाल लोभी सदा।

अति प्रसिद्ध जग नाम, कासमीर[2] को तिलक यह ॥७२॥

सुमति-[दो०] निज प्रताप-दिनकर करत, लोचन-कमल प्रकास।

पान खात मुसुकात मृदु, को यह केशवदास ? ॥७३॥

विमति-[सो०] नृप माणिक्य सुदेश, दच्छिण तिय जिय भावतो।

कटितट सुपट सुवेश, कल काची[3] शुभ मडई ॥७४॥

सुमति-[दो०] कुडल परसन मिस कहत, कहौ कौन यह राज।

शंभुशरासन गुन करौ, करनालबित आज ॥७५॥

विमति-[सो०] जानहिं बुद्धिनिधान, मत्स्यराज[4] यहि राज को।

समर समुद्र समान, जानत सब अवगाहि कै ॥७६॥

सुमति-[दो०] अंगराग-रंजित, रुचिर, भूषण-भूषित देह।

कहत बिदूषक सो कछू, सो पुनि को नृप येह ? ॥७७॥

विमति-[सो०] चंदनचित्रतरग[5] सिंधुराज[6] यह जानिए।

बहुत वाहिनी[7] संग, मुक्तामाल[8] विशाल उर ॥७८॥

[दो०] सिगरे राज समाज के, कहे गोत्र गुण ग्राम।

देश सुभाव प्रभाव अरु, कुल बल विक्रम नाम ॥७९॥

---

(१) राजराज = कुवेर। (२) कासमीर = काश्मीर देश; केसर। (३) काची = काचीपुरी; करधनी। (४) मत्स्यराज = मत्स्यदेश का राजा; मछलियों का राजा। (५) चदनचित्रतरग = जिसके शरीर पर चदन की तरगे सी चित्रित हैं, जिसकी तरगे चदन से चित्रित हैं। (६) सिंधुराज = सिंधु देश का राजा; महासागर। (७) वाहिनी = सेना; नदी। (८) मुक्तामाल = मोतियों की माला, मोतियो का समूह।

[घनाक्षरी]

पावक पवन मणिपन्नग पतंग पितृ,
जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिंधु,
केशव चराचर जे वेदन बताये हैं।
अजर अमर अज अंगी औ अनंगी सब,
बरणि सुनावै ऐसे कौने गुण पाये हैं।
सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिबे को,
भूपन को रूप धरि विश्वरूप आये हैं ॥८०॥

[विजय छंद]

दिकपालन की, भुवपालन की, लोकपालन की, किन मातु गयी च्वै
ठाढ़ भये उठि आसन ते, कहि केशव शंभुशरासन को छ्वै
काहू चढ़ायो न, काहू नवायो न, काहू उठायो न आँगुरहू द्वै
स्वारथ भो न भयो परमारथ, आये ह्वै वीर, चले वनिता ह्वै ॥८१॥

[दो०] सबही को समझ्यो सबन, बल विक्रम परिमाण।
सभा मध्य ताही समय आये रावण बाण ॥८२॥
रावण बाण महाबली, जानत सब ससार।
जो दोऊ धनु करखिहैं, ताको कहा विचार ॥८३॥

बाणासुर— [सवैया]

केशव और ते और भयी, गति जानि न जाय कछू करतारी।
सूरन के मिलिबे कहँ आय, मिल्यो दसकंठ सदा अविचारी।

बाढि गयो बकवाद वृथा, यह भूलि, न भाट सुनावहि गारी।
चाप चढाय हौं कीरति कौं, यह राज बरै* तेरी राजकुमारी ॥८४॥
खडित मान भयो सबको नृपमडल हारि रह्यो जगती को।
व्याकुल बाहु, निराकुल बुद्धि, थक्यो बल विक्रम लकपती को॥
कोटि उपाय किये कहि केशव क्योंहुँ न छाडत भूमि रती को।
भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यो न चलै चित योग-यती को ॥८५॥
[दो०] मेरे गुरु को धनुष यह, सीता मेरी माय।
दुहूँ भाँति असमजसै, बाण चले सुख पाय ॥८६॥

रावण— [तोटक]

अब सीय लिये बिन हौं न टरौं। कहुँ जाहुँ न तौ लगि नेम धरौं।
जब लौं न सुनौं अपने जन को। अति आरत शब्द 'हते तन को'॥८७॥
काहु कहूँ सुर आसुर मार्‍यो। आरत शब्द अकास पुकार्‍यो।
रावण के वह कान पर्‍यो जब। छोडि स्वयवर जात भयो तब ॥८८॥
ऋषिराज सुनी यह बात जहीं। सुख पाइ चले मिथिलाहि तहीं।
बन राम सिला दरसी जबहीं। तिय सुंदर रूप भई तबहीं ॥८९॥

रामचंद्र का जनकपुर में आगमन

[दो०] काहू को न भयो कहूँ, ऐसो सगुन, न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उद्दोत ॥९०॥

सूर्योदय-वर्णन

राम— [चौपाई]

कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे।
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै। चोर, चकोर, चिता सो लसै ॥९१॥

* कहीं कहीं "करै" पाठ भी मिलता है।

[षट्पद]

मण—अरुण गात अति प्रात पद्मिनीप्राणनाथ भय ।
मानहुँ केशवदास कोकनद कोकप्रेममय ।
परिपूरण सिंदूरपूर कैधौं मंगलघट ।
किधौं शुक्र को छत्र मढ्यो मानिकमयूषपट ॥
श्रोणितकलित कपाल यह किल कपालिका काल को ।
ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को ॥९२॥

[तोटक छंद]

पसरे कर कुमुदिनि काज मनो ।
किधौं पद्मिनि कों सुख देन घनो ।
जनु ऋक्ष सबै यहि त्रास भगे ।
जिय जानि चकोर फँदान ठगे ॥९३॥

[चचरी छंद]

चंद्र—व्योम मे मुनि देखिये अति लाल श्रीमुख साजहीं ।
सिंधु मे बडवाग्नि की जनु ज्वालमाल बिराजहीं ।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भयी ।
सूर वाजिन की खुरी अति तिक्तता तिनकी हयी ॥९४॥
श्वामित्र-[सो०] चढ्यो गगन तरु धाइ, दिनकर-बानर अरुणमुख ।
कीन्हों झुकि झहराइ, सकल तारका कुसुम बिन ॥९५॥
मण—[दो०] जहीं बारुणी[1] की करी, रंचक रुचि द्विजराज[2] ।
तहीं कियो भगवंत बिन, संपति शोभा साज ॥९६॥

---

(१) बारुणी = पश्चिम दिशा; मदिरा। (२) द्विजराज = चंद्रमा; ब्राह्मण।

[तोमर छंद]

चहुँभाग बाग तडाग। अब देखिए बडभाग॥
फल फूल सों सयुक्त। अलि यों रमैं जनु मुक्त॥९७

रामचद्र—[दो०] ते न नगरि, ना नागरी, प्रतिपद हसक हीन
जलजहार शोभित न जहँ, प्रगट पयोधर पीन॥९८

[सवैया]

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय मे जब जाने।
बीस बिसे[1] व्रत भग भयो, सो कहौ, अब, केशव, को धनु ताने?
शोक की आगि लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने॥९९॥

विश्वामित्र और जनक की भेंट

[दोधक छद]

आइ गये ऋषिराजहिं लीने। मुख्य सतानँद विप्र प्रवीने।
देखि दुवौ भये पॉयनि लीने। आशिष शीरपबासु लै दीने॥१००

विश्वामित्र— [सवैया]

केशव ये मिथिलाधिप है जग मे जिन कीरतिबेलि बयी है।
दानकृपान-विधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लयी है।
अ ग छ सातक आठक[2] सो भव तीनिहु लोक में सिद्धि भयी है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी, परिपूरणता शुभ योगमयी है॥१०१॥

---

(१) बीसबिसे=बीसों बिस्वा, निश्चय। (२) छः अग—(वेदाग) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, छद। सात अग—(राजनीति के) राजा, मत्री, मित्र, कोष, देश, दुर्ग, सेना। आठ अग—(अष्टागयोग) यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि।

जनक–[सो०] जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि मैं।
कीन्हों उत्तमवर्ण, तेई विश्वामित्र ये ॥१०२॥

[मोहन छंद]

लक्ष्मण—जनराजवत। जगयोगवत।
तिनको उदोत। केहि भाँति होत ॥१०३॥

श्रीराम— [विजय छंद]

सब छत्रिन आदि दै काहु छुई न छुये बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निशि बासर केशव लोकन को तमतेज भगै।
भवभूषण[1] भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी[2] न लगै।
जलहूँ थलहूँ परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत ज्योति जगै ॥१०४॥

[तारक छंद]

जनक—यह कीरति और नरेशन सोहै।
सुनि देव अदेवन को मन मोहै।
हम को बपुरा सुनिए ऋषिराई।
सब गाँउँ छ सातक की ठकुराई॥ १०५॥

विश्वामित्र— [विजय छंद]

आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालै सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।
भूपति की तुमहीं धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई।
केशव भूषण को भवि[3] भूषण भू तन तैं तनया उपजाई ॥१०६॥

---

(१) भवभूषण = शिवजी का अलंकार; राख। (२) मसी = (गर्व की) कालिमा। (३) भवि = भव्य।

जनक–[दो०] इहि विधि की चित चातुरी, तिनकों कहा अकत्थ।
लोकन की रचना रुचिर, रचिबे कौं समरत्थ ॥१०७॥

[दोधक छंद]

ये सुत कौन के सोभहिं साजे ?
सुंदर श्यामल गौर विराजे।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ।
कै कमला विमला[1] पति कोऊ ॥१०८

विश्वामित्र— [चौपाई]

सुंदर श्यामल राम सु जानो। गौर सुलक्ष्मण नाम बखानो॥
आशिष देहु इन्हैं सब कोऊ। सूरज के कुलमंडन दोऊ ॥१०९॥

[दो०] नृपमणि दशरथ नृपति के, प्रगटे चारि कुमार।
राम भरत लक्ष्मण, ललित, अरु शत्रुघ्न उदार ॥११०॥

[घनाक्षरी]

दानिन के शील, पर दान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिए सुभाय के।
दीप दीप हूँ के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के।
आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परदारप्रिय[2] साधु, मन वच काय के।
देहधर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के ॥१११॥

---

(१) विमला = सरस्वती। (२) परदार = लक्ष्मी अथवा पृथ्वी।

[तार छंद]

रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो।
अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो।
जनक—ऋषि है वह मंदिर माँझ मँगाऊँ।
गहि ल्यावहि हौं जनयूथ बुलाऊँ ॥११२॥

[दंडक छंद]

बज्र ते कठोर है, कैलाश ते विशाल, काल-
दंड ते कराल, सब काल काल गावई।
केशव त्रिलोक के विलोक हारे देव सब,
छोड चंद्रचूड़ एक और को चढ़ावई ?
पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन,
पर्वतारि-पर्वत-प्रभा[1] न मान पावई।
विनायक एकहू पै आवै न पिनाक ताहि
कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई ॥११३॥

[तोमर]

विश्वामित्र—सुनि रामचंद्र कुमार। धनु आनिए यहि बार॥
पुनि बेगि ताहि चढ़ाव। यश लोक लोक बढ़ाव ॥११४॥

धनुष-भंग

[दो०] ऋषिहि देखि हरष्यो हियो, राम देखि कुम्हलाइ।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाइ ॥११५॥

---

(१) पर्वतारि-पर्वत-प्रभा = सुमेरु पर्वत की आभा। सुमेरु देवताओं का पर्वत माना जाता है और इंद्र (पर्वतारि) देवताओं का राजा है।

[स्वागता छद]

रामचद्र कटि सों पटु बाँध्यो। लीलयेव हर को धनु साँध्यो।
नेकु ताहि करपल्लव सो छ्वै। फूलमूल जिमि टूक कर्यो द्वै ॥११६॥

[सवैया]

उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जु हाथ कै लीनो।
निर्गुण ते गुणवत कियो सुख केशव सत अनतन दीनो।
ऐचो जहीं तवहीं कियो सयुत तिच्छ कटाच्छ नराच नवीनो।
राजकुमार निहारि सनेह सो शभु को साँचो शरासन कीनो ॥११७॥

[विजया छद]

प्रथम टकोर झुकि झारि ससार मद
चड कोदड रह्यो मडि नव खड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल वल
पालि ऋषिराज के बचन परचड को।
सोधु दै ईश को, वोधु जगदीश को,
क्रोधु उपजाइ भृगुनद वरिवड को।
बाधि[1] वर स्वर्ग को, साधि अपवर्ग[2], धनु-
भग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मड को ॥११८॥

जनक--[दो०] सतानद आनद मति, तुम जो हुते उन साथ।
बरज्यो काहे न धनुष जब, तोर्यो श्रीरघुनाथ ॥११९॥

---

(१) बाधि = बाधा पहुँचाकर। धनुर्भग के घोर शब्द से स्वर्ग के देवता घबड़ा गये। (२) अपवर्ग = मोक्ष। मोक्ष पद सब लोको के परे समझा जाता है। सब लोको को पार कर वहाँ तक शब्द पहुँच गया।

[तोमर]

सतानंद–सुनु राजराज विदेह । जब हौं गयो वहि गेह ।
कछु मै न जानी बात । कब तोरियो धनु तात ॥१२०॥

[दो०] सीताजू रघुनाथ को, अमल कमल की माल ।
पहिराई जनु सबन की, हृदयावलि भूपाल ॥१२१॥

[चित्रपदा छंद]

सीय जहीं पहिरायी । रामहि माल सुहायी ।
दुंदुभि देव बजाये । फूल तहीं बरसाये ॥१२२॥

(७) बरात आगमन

[दो०] पठई तबहीं लगन लिखि, अवधपुरी सब बात ।
राजा दशरथ सुनतहीं, चाह्यो चली बरात ॥१२३॥

[मोटनक छंद]

आये दशरत्थ बरात सजे । दिगपाल गयंदनि देखि लजे ।
चारयो दल दूलह चारु बने । मोहे सुर औरनि कौन गनै ॥१२४॥

[तारक छंद]

बनि चारि बरात चहूँ दिशि आयी ।
नृप चारि चमू अगवान पठायी ॥
जनु सागर को सरिता पगु धारी ।
तिनके मिलिबे कहँ बाहँ पसारी ॥१२५॥

[दो०] बारोठे[1] को चार करि, कहि केशव अनुरूप ।
द्विज दूलह पहिराइयो, पहिराए सब भूप ॥१२६॥

---

(१) बारोठे (द्वारकोष्ठ) के चार = द्वारपूजा ।

[त्रिभंगी छंद]

दशरत्थ सँघाती सकल बराती बनि बनि मंडप माहँ गये।
आकाश विलासी प्रभा प्रकाशी जलज गुच्छ जनु नखत नये।
अति सुंदर नारी सब सुखकारी मंगल गारी देन लगीं।
बाजे बहु बाजत जनु घन गाजत जहाँ तहाँ शुभ शोभ जगीं ॥१२७॥
दो०—रामचंद्र सीता सहित, शोभत हैं तेहि ठौर।
सुवरणमय मणिमय खचित, शुभ सुंदर सिर मौर ॥१२८॥

विवाह

[षट्पद]

बैठे मागध सूत विविध विद्याधर चारण।
केशवदास प्रसिद्ध सिद्ध शुभ अशुभनिवारण।
भरद्वाज जावालि अत्रि गौतम कश्यप मुनि।
विश्वमित्र पवित्र, चित्र मति वामदेव पुनि।
सब भाँति प्रतिष्ठित निष्ठमति तहँ वसिष्ठ पूजत कलश।
शुभ शतानंद मिलि उच्चरत शाखोच्चार सबै सरस ॥१२९॥

[अनुकूल छंद]

पावक पूज्यो समिध सुधारी।
आहुति दीनी सब सुखकारी।
दै तब कन्या बहु धन दीन्हों।
भाँवरि पारि जगत यश लीन्हों ॥१३०॥

[स्वागता छंद]

राजपुत्रिकनि सों छबि छाये। राज राज सब डेरहि आये।
हीर चीर गज वाजि लुटाये। सुदरीन बहु मगल गाये ॥१३१

शिष्टाचार

[सो०] वासर चौथे याम, सतान द आगू दिये।
दशरथ नृप के धाम, आये सकल विदेह बनि ॥१३२॥

[दो०] आगे ह्वै दशरथ लियो, भूपति आवत देखि।
राजराज मिलि बैठियो, ब्रह्मब्रह्म ऋषि लेखि ॥१३३॥

जनक— [सवैया]

सिद्ध समाज सजै अजहूँ न कहूँ जग योगिन देखन पायी
रुद्र के चित्त समुद्र बसै नित ब्रह्महु पै बरणी जो न जायी
रूप न रग न रेख विसेख अनादि अन त जो वेदन गायी
केवल गाधि के न द हमै वह ज्योति सो मूरतिवत देखायी ॥१३४

[तारक छद]

जिनके पुरिषा भुव गगहि ल्याये।
नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधाये॥
जिनके सुत पाहन ते तिय कीनी।
हर को धनुभग भ्रमे पुर तीनी ॥१३५॥
जिन आपु अदेव अनेक सँहारे।
सब काल पुरदर के रखवारे।
जिनकी महिमाहि अन त न पायो।
हम को बपुरा, यश वेदनि गायो ॥१३६॥

बिनती करिए, जन जो जिय लेखो।
दुख देख्यो ज्यों काल्हि, त्यों आजहु देखो।
यह जानि हिये ढिठई मुख भाषी।
हम हैं चरणोदक के अभिलाषी ॥१३७॥

[तामरस छद]

जब ऋषिराज विनय करि लीनो।
सुनि सब के करुणा रस भीनो।
दशरथ राय यहै जिय जानी।
यह वह एक भई रजधानी ॥१३८॥

दशरथ-[दो०] हमको तुम से नृपति की, दासी दुर्लभ राज।
पुनि तुम दीनी कन्यका, त्रिभुवन की सिरताज ॥१३९॥

वसिष्ठ— [विजय छद]

एक सुखी यहि लोक बिलोकिए है वहि लोक निरै[1] पगु धारी।
एक इहाँ दुख देखत केशव होत वहाँ सुरलोक-विहारी।
एक इहाँऊ उहाँ अति दीन सो देत दुहूँ दिशि के जन गारी।
एकहि भाँति सदा सब लोकनि है प्रभुता मिथिलेश तिहारी ॥१४०॥

जावालि—

ज्यों मणि मे अति ज्योति हुती रवि ते कछु और महाछबि छायी।
चद्रहिं वदत है सब केशव ईश ते वदनता[2] अति पायी ॥

---

(१) निरै = निरय, नरक। (२) वदनता = वदनीयता, वदन किए जाने की योग्यता।

भागीरथी हुतिय अति पावन बावन ते अति पावनतायी।
त्यों निमिवश बडोई हुतो भइ सीय सँयोग बड़ीये बडाई ॥१४१
[दो०] पूजि राज ऋषि ब्रह्म ऋषि, दुंदुभि दीन्ह बजाइ।
जनक कनक-मंदिर गये, गुरु समेत सुख पाइ ॥१४२।

जेंवनार

[चामर छंद]

आसमुद्र के छितीश और जाति को गने।
राजभौन भोज को सबै जने गये बने।
भाँत भाँति अन्नपान व्यंजनादि जेवहीं।
देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेवहीं ॥१४३॥

[हरिगीत छंद]

अब गारि* तुम कहँ देहि हम कहि कहा दूलह रामजू।
कछु बाप प्रिय परदार सुनियत करी कहत कुबाम[1] जू।
को गनै कितने पुरुष कीन्हे कहत सब संसार जू।
सुनि कुँवर चित दै बरणि ताको कहिय सब व्यौहार जू ॥१४४॥
बहु रूप सो नवयोवना बहु रत्नमय बपु मानिए।
पुनि वसन रत्नाकर बन्यो अति चित्त चंचल जानिए।
सुभ सेष फन मनिमाल पलिका परति करति प्रबंध जू।
करि सीस पच्छिम, पाँय पूरब गात सहज सुगंध जू ॥१४५॥

---

* कहते हैं कि केशवदास के कहने से यह 'गारी' प्रवीणराय पातुरी ने बना दी थी। (१) कुबाम = बुरी स्त्री, (कु) पृथ्वी रूप स्त्री।

वह हरी हठि हिरनाच्छ दैयत देखि सुंदर देह सो।
वरवीर यज्ञवराह वर ही लयी छीनि सनेह सो।
ह्वै गई विहवल अंग पृथु फिरि सजे सकल सिँगार जू।
पुनि कछुक दिन वश भयी ताके लियो सरवसु सार जू॥१४६॥
वह गयो प्रभु परलोक, कीन्हों हिरण्यकस्यप नाथ जू।
तेहि भाँति भाँतिन भोगियो भ्रमि पल न छोड्यो साथ जू।
वह असुर श्रीनरसिंह मार्यो लई प्रवल छँडाइ कै।
लै दई हरि हरिचंद राजहिं बहुत जो सुख पाइ कै॥१४७॥
हरिचंद विश्वामित्र को दयी दुष्टता जिय जानि कै।
तेहि वरो वलि वरिवंड वरही, विप्र तपसी जानि कै।
वलि बाँधि छल वल लयी वावन, दयी इंद्रहि आनि कै।
तेहि इंद्र तजि पति कर्यो अर्जुन सहस भुज को जानि कै॥१४८॥
तव तासु छवि मद छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्नि जू।
परसुराम सो सकुल जार्यो प्रबल वल की अग्नि जू।
तेहि वेर तवहीं सकल छत्रिन मारि मारि वनाइ कै।
इकवीस वेरा दयी विप्रन रुधिर जल अन्हवाइ कै॥१४९॥
वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूँकि कै।
अरु कहत हैं सव रावणादिक रहे ताकहँ ढूँकि कै[1]।
यहि लाज मरियत, ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू।
अव और मुख निरखै न ज्यों त्यों राखियो रघुनाथ जू॥१५०॥

(१) रहे ताकहँ ढूँकि कै=उसकी ताक लगाए हैं, उसे लेने की ताक में हैं।

बरात बिदाई

[सो०] प्रात भये सब भूप, बनि बनि मंडप मे गये ।
जहाँ रूप अनुरूप, ठौर ठौर सब सोभिजै ॥ १५१ ॥

[नाराच छंद]

रची विरंचि वास सी निथबराजिका भली ।
जहाँ तहाँ बिछावने बने घने थली थली ।
वितान श्वेत श्याम पीत लाल नील के रँगे ।
मनो दुहूँ दिसान के समान बिंब से जगे ॥ १५२ ॥

[पद्धटिका छंद]

गज मोतिन की अवली अपार ।
तहँ कलशन पर उरमति सुढार ।
सुभ पूरित रति जनु रुचिर धार ।
जहँ तहँ अकास गगा उदार ॥ १५३ ॥
गजदंतन[1] की अवली सुदेश ।
तहँ कुसुमराजि राजति सुवेस ।
सुभ नृप कुमारिका करति गान ।
जनु देविन के पुष्पक विमान ॥ १५४ ॥

[तामरस छंद]

इत उत शोभित सुंदरि डोलै ।
अर्थ अनेकनि बोलनि बोलै ।

(१) गजदंतन = टोड़ा ।

सुखमुख मडल चित्तनि मोहै।
मनहुँ अनेक कलानिधि सोहै ॥१५५॥
भृकुटि विलास प्रकाशित देखे।
धनुष मनोज मनोमय लेखे।
चरचित हास चद्रिकनि मानो।
सुखमुख वासनि वासित जानो ॥१५६॥
अमल कपोलै आरसी, बाहू चपक मार।
अवलोकनै विलोकिए, मृगमद[1]मय घनसार ॥१५७॥

पलकाचार

[सवैया]

बैठे जराय जरे पलिका पर रामसिया सबको मन मोहैं।
ज्योति-समूह रहे मढ़िकै, सुर भूलि रहे, बपुरे नर को हैं ?
केशव तीनिहुँ लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
शोभन सूरजमडल माँझ मनौ कमला-कमलापति सोहैं ॥१५८॥

राम का शिखनख

[दो०] गगाजल[2] की पाग सिर, सोहत श्रीरघुनाथ।
शिव सिर गगाजल किधौं, चद्र चद्रिका साथ ॥१५९॥

[तोमर छद]

कछु भृकुटि कुटिल सुवेश। अति अमल सुमिल सुदेश।
विधि लिख्यो सोधि सुतत्र। जनु जया-जय के मत्र ॥१६०॥

---

(१) मृगमद = कस्तूरी। (२) गगाजल = एक प्रकार का कपड़ा।

[दो०] यदपि भृकुटि रघुनाथ की, कुटिल देखियत ज्योति।
तदपि सुरासुर नरन की, निरखि शुद्ध गति होति ॥१६१॥
स्रवन मकर-कुंडल लसत, मुख सुखमा एकत्र।
ससि समीप सोहत मनो, स्रवन मकर नक्षत्र ॥१६२॥

[पद्धटिका छंद]

अति वदन सोभ सरसी[1] सुरंग।
तहँ कमल नयन नासा तरंग।
जनु युवति चित्त विभ्रम विलास।
तेइ भ्रमर भँवत रस रूप आस ॥१६३॥

[निशिपालिका छंद]

सोभिजति दंतरुचि[2] सुभ्र उर आनिए।
सत्य जनु रूप अनुरूपक बखानिए।
ओंठ रुचि रेख सविसेख सुभ श्रीरये।
सोधि जनु ईस शुभ लक्षण सबै दये ॥१६४॥

[दो०] ग्रीवा श्रीरघुनाथ की, लसति कंबुवर वेख।
साधु मनो बच काय की, मानो लिखी त्रिरेख ॥१६५॥

[सुंदरी छंद]

सोभन दीरघ बाहु विराजत।
देव सिहात, अदेव ते लाजत।
वैरिन को अहिराज बखानहु।
है हितकारिन की ध्वज मानहु ॥१६६॥

---

(१) सरसी — तालाब। (२) दंतरुचि — दाँतों की कांति।

ज्यौं उर मैं भृगु-लात बखानहु।
श्री कर को सरसीरुह मानहु।
सोहति है उर में मनि यों जनु।
जानकि को अनुरागि रह्यो मनु ॥१६७॥

[दो०] सोहत जनरत-रामउर, देखत जिनको भाग।
आइ गयो ऊपर मनो, अ तर को अनुराग ॥१६८॥

[पद्धटिका छद]

सुभ मोतिन की दुलरी सुदेस।
जनु वेदन के अच्छर सुबेस।
गजमोतिन की माला बिमाल।
मन मानहुँ सतन के मराल ॥१६९॥

[विशेषक छद]

स्याम द्वौ पग लाल लसै द्युति यों तल की।
मानहुँ सेवति ज्योति-गिरा, यमुनाजल की।
पाट जटी अति स्वेत सो हीरन की अवली।
देवनदी कन मानहुँ सेवत भाँति भली ॥१७०॥

[दो०] को वरनै रघुनाथ-छबि, केसव बुद्धि उदार।
जाकी किरपा सोभिजति, सोभा सब ससार ॥१७१॥

सीता का रूप-वर्णन

[दडक]

को है दमयती इदुमती रति, राति-दिन,
होहिं न छबीली छवि इन जो सिंगारिए।

केशव लजात जलजात जातवेद[1] ओप,
जातरूप[2] बापुरो त्रिरूप सो निहारिए।
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूपकै विचारिए।
सीताजू के रूप पर देवता कुरूप को हैं?
रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारिए॥ १७२ ॥

[गीतिका छंद]

श्री सोभिजै सखि सुंदरी जनु दामिनी वपु मंडिकै।
घन स्याम को जनु सेवहीं जड मेघ-ओघन छंडिकै॥
इक अंग चर्चित चारु चंदन चंद्रिका तजि चंद को।
जनु राहु के भय सेवहीं रघुनाथ आनँदकंद को॥१७३॥

मुख एक है नत लोकलोचन लोल लोचन को हरे।
जनु जानकी सँग सोभिजै सुभ लाज देहन को धरे॥
तहँ एक फूलन के बिभूखन एक मोतिन के किये।
जनु छीरसागर देवता तन छीर छीटनि को छिये॥१७४॥

[सो०] पहिरे वसन सुरंग, पावक युत स्वाहा[3] मनो।
सहज सुगंधित अंग, मानो देवी मलय की॥१७५॥

---

(१) जातवेद = अग्नि। (२) जातरूप = सुवर्ण। (३) स्वाहा = अग्नि (पावक) की स्त्री।

दायज वर्णन

[चामर छंद]

मत्त दंतिराज राजि बाजिराज राजि कै।
हेम,हीर मुक्त चीर, चारु साज साजि कै।
बेस वेस बाहिनी असेस वस्तु सोधियो।
दाइजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो ॥१७६॥
वस्त्र भौन स्यो[1] वितान आसने विछावने।
अस्त्र सस्त्र अंगत्राण भाजनादि को गने।
दासि दास बासि[2] बास[3] रोम पाट के किये।
दाइजो[4] विदेहराज भाँति भाँति को दियो ॥१७७॥

परशुराम संवाद

[दो०] विस्वामित्र विदा भये, जनक फिरे पहुँचाइ।
मिले आगिली फौज को, परसुराम अकुलाइ ॥१७८॥

[चचरी छंद]

मत्त दंति अमत्त हो गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेस केशव दुंदुभि नहिं वज्जहीं ॥
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि कै तनत्राण एकै नारि वेखन सज्जहीं ॥१७९॥

[दो०] वामदेव ऋषि सो कह्यो, 'परसुराम रणधीर।
महादेव को धनुष यह, को तोरेउ बलवीर ?' ॥१८०॥

---

(१) स्यो=सहित। (२) बासि=सुगंध से सुवासित करके। (३) बास=वस्त्र। (४) दाइजो=दहेज।

वामदेव—महादेव को धनुष यह, परशुराम ऋषिराज ।
तोरेउ 'रा' यह कहतहीं, समुझेउ रावन राज ॥१८१॥

[चंद्रकला छंद]

परशुराम—बर बान-सिखीन असेस समुद्रहि,
सोखि सखा सुख ही तरिहैं।
पुनि लंकहिँ औटि कलंकित कै,
फिरि पंक कलंकहिँ की भरिहैं॥
भल भूँजि कै राख सुखै[1] करिकै,
दुख दीरघ देवन को हरिहैं।
सितकंठ के कंठन को कठुला,
दसकंठ के कंठन को करिहौं ॥१८२॥

[संयुता छंद]

परशुराम—यह कौन को दल देखिए?
वामदेव—यह राम को प्रभु लेखिए॥
परशुराम—कहि कौन राम न जानियो।
वामदेव—शर ताडका जिन मारियो ॥१८३॥

[विजय छंद]

परशुराम—ताड़का सँहारी तिय न विचारी
कौन बडाई ताहि हने?
वामदेव—मारीच हुते सँग प्रबल सकल खल
अरु सुबाहु काहू न गने।

(१) सुखै = सहज ही में।

करि क्रतु[1] रखवारी गुरु सुखकारी
गौतम की तिय सुद्ध करी।
जिन रघुकुल मङ्यो हरधनु खङ्यो
सीय स्वयबर माँझ बरी ॥१८४॥

परशुराम [दो०] हर हू होतो दृड द्वै, धनुष चढावत कष्ट।
देखो महिमा काल की, कियो सो नरसिसु नष्ट ॥१८५॥

[विजय छद]

बोरों सबै रघुबस कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहिं।
बान की वायु उडाइ कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।
रामहिं बाम समेत पठै वन कोप के भार मैं भूँजौ भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं॥१८६॥

[सो०] राम, देखि रघुनाथ, रथ ते उनरे वेगि दै।
गहे भरत को हाथ, आवत राम विलोकियो ॥१८७॥

[दडक छद]

परशुराम—अमल सजल घनस्याम वपु केसौदास
चद्रहू ते चारु मुख सुखमा को ग्राम है
कोमल कमल-दल दीरघ विलोचननि
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है।
बालक विलोकियत पूरन पुरुष, गुन
मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है।

---

(१) क्रतु = यज्ञ।

वर मान वामदेव को धनुख तोरो इन
जानत हौं बीस बिसे राम बेस काम है ॥१८८॥

[गीतिका छद]

भरत—कुस मुद्रिका समिधै स्त्रुवा कुस औ' कमंडल को लिये।
करमूल सर धनु तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिये॥
धनु बाण तिच्छ कुठार, केसव मेखला मृग-चर्म सों।
रघुवीर को यह देखिए रसवीर सात्त्विक धर्म सों ॥१८९॥

[नाराच छ द]

राम—प्रचंड हैहयाधिराज दंडमान जानिए।
अखंड कीर्त्तिलेय भूमि देयमान मानिए॥
अदेव देव जेय भीत रच्छमान लेखिए।
अमेय तेज भर्गभक्त भार्गवेश देखिए ॥१९०॥

परशुराम—सुनि रामचंद्र कुमार। मन वचन कीर्ति उदार॥
राम—भृगुवंश के अवतंस। मनवृत्ति है केहि अंस ॥१९१॥

[मदिरा छ द]

परशुराम—तोरि सरासन संकर को सुभ सीय स्वयंवर माँझ बरी।
ताते बढ़्यो अभिमान महा मन मेरीयो नेक न संक करी॥
राम—सो अपराध परो हम सों अब क्यों सुधरै तुमहूँ धौं कहौ।
परशु०-बाहु दै दोउ कुठारहिं केशव आपने धाम को पथ गहौ॥१९२॥

[कुंडलिया]

राम—टूटै टूटनहार तरु, वायुहि दीजत दोस।
त्यो अब हर के धनुख को हम पर कीजत रोस।

हम पर कीजत रोस कालगति जानि न जायी।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटायी।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होइ तिनूका वज्र, वज्र तिनुका ह्वै टूटै॥ १९३॥

[विजय छंद]

परशुराम—केसव हैहयराज को मास
हलाहल कौरन खाइ लियो रे।
तालगि मेद महीपन को
घृत घोरि दियौ न सिरानो हियो रे।
खीर[1] खडानन को मद केसव
सो पल मैं करि पान लियो रे।
तौ लौं नहीं सुख जौ लहुँ तू
रघुबंस को सोन-सुधा न पियो रे॥ १९४॥

[तंत्री छंद]

भरत—बोलत कैसे भृगुपति सुनिए
सो कहिए तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हो बडपन राखौ
जाते तुम सब जग यश पावौ॥
चंदनहूँ मे अति तन घसिए
आगि उठै यह गुनि सब लीजै।

---

(१) खीर = (क्षीर) दूध।

हैहय मारे, नृपति सँहारे
सो जस लै किन जुग जुग जीजै ॥ १९५ ॥

[नाराच छंद]

परशुराम—भली कही भरत्थ तैं उठाय आगि अंग तै ।
चढ़ाउ चोपि चाप आप बाण ले निखग तै ॥
प्रभाउ आपनो देखाउ छोड़ि बाल भाइ कै ।
रिझाउ राजपुत्र मोहिं राम लै छुडाइ कै ॥१९६॥

[सो०] लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोस करि ।
बरज्यौ श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा ? ॥१९७॥

[दो०] भगवतन सो जीतिए, कबहुँ न कीने शक्ति ।
जीतिय एकै बात तें, केवल कीने भक्ति ॥१९८॥

[हरिगीत छंद]

जब हयो हैहयराज इन बिन छत्र छितिमंडल कर्‌यो ।
गिरि बेधि[1], खटमुख[2] जीति, तारक-नंद[3] को जब ज्यौ हर्‌यो ॥

---

(१) महादेवजी से शस्त्र-विद्या सीखकर जब परशुराम कैलास से नीचे उतरे तो अपनी बाण-विद्या की परीक्षा के उद्देश्य से हिमालय की एक शाखा पर बाण मारे जिससे पहाड़ फटकर घाटी बन गई । इसी घाटी को कालिदास ने क्रौंचरंध्र कहा है—हसद्वार भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौंचरध्रम् (मेघदूत, पू० ५७) । कहते हैं, हंस इसी रास्ते से आते-जाते हैं । (२) खटमुख (षण्मुख) = स्वामी कार्तिकेय । तारकासुर जब बहुत प्रबल हुआ तो देवताओं ने महादेवजी की स्तुति की । उन्हीं के वीर्य से उत्पन्न व्यक्ति के हाथ से तारकासुर मारा जा सकता था । महादेवजी ने प्रसन्न होकर अग्नि को अपना तेज प्रदान किया ।

सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनंदिनी।
'वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भयी जगवंदिनी' ।।१९९।।

[तोमर छंद]

परशुराम–सुनु राम सील-समुद्र। तव बंधु हैं अति छुद्र।
मम वाडवानल कोप। अँगु कियो चाहत लोप ।।२००।।

[दोधक छंद]

शत्रुघ्न—हौ भृगुनंद बली जग माहीं।
राम बिदा करिए घर जाहीं।
हौं तुमसौं फिरि युद्धहि मॉडौं।
छत्रिय वंश को वैर लै छाँडौं ।।२०१।।

[तोटक छंद]

यह बात सुनी भृगुनाथ जबै।
कहि,"रामहि लै घर जाहु अबै।।
इन पै जग जीवत जो बचिहौं।
रन हौं तुमसौं फिरिकै रचिहौं ।।२०२।।

[दो०] "निज अपराधी क्यों हतौं, गुरुअपराधी छाँड़ि।
ताते कठिन कुठार अब, रामहिं सों रन माँड़ि ।।२०३।।

अग्नि ने उसे, न सह सकने के कारण, गंगा में डाल दिया। वहाँ कुमार कार्तिकेय का जन्म हुआ। उनके छः मुख थे जिनसे वे छ कृत्तिकाओं का दूध एक साथ पीते थे। शस्त्राभ्यास के समय इनकी परशुराम से होड़ हो गई जिसमें परशुराम ने इन्हें नीचा दिखलाया। (३) कहते हैं, तारकासुर का पुत्र अपने पिता का बदला लेने के लिये उठा तो परशुराम ही से उसका वध हो सका।

[विजय छंद]

"भूतल के सब भूपन को मद
भोजन तो बहु भाँति कियोई।
मोद सों तारक-नंद को मेद
पछ्यावरि[1] पान सिरायो हियोई।
खीर खडानन को मद केसव
सो पल मे करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कंठ को सोनित
पान को चाहै कुठार कियोई" ॥२०४॥

[त्रोटक छंद]

लक्ष्मण—जिनकोहि अनुग्रह वृद्धि करै।
तिनको किमि निग्रह[2] चित्त परै॥
जिनको जग अच्छत सीस धरै।
तिनको तन सच्छत कौन करै ॥२०५॥

[विशेषक छंद]

परशुराम—हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हौ।
मारनहारहिं देखि, कहा मन छोभत हौ।
छत्रिय के कुल ह्वै किमि बैनन दीन रचौ।
कोटि करो उपचार न कैसेहु मीचु बचौ ॥२०६॥

लक्ष्मण—छत्रिय ह्वै गुरु लोगन के प्रतिपाल करै।
भूलिहु तौ तिनके गुन औगुन जी न धरै॥

(१) पछ्यावरि = शिखरन। (२) निग्रह = दंड।

तौ हमको गुरुदोस नहीं अब एक रती।
जो अपनी जननी तुमहीं सुख पाइ हती ॥२०७॥

[विजय छंद]

परशुराम—लक्ष्मण के पुरिखान कियो
पुरुसारथ सो न कह्यौ परई।
वेस बनाइ कियौ बनितान को
देखत केसव ह्यौ हरई।
क्रूर कुठार निहारि तजै फल
ताको यहै जो हियो जरई।
आजु तै केवल तोको महाधिक,
छत्रिन पै जो दया करई॥२०८॥

[गीतिका छंद]

तब एकविंसति बेर मै बिन छत्र की पृथिवी रची।
बहु कुंड सोनित सौं भरे पितु तर्पनादि क्रिया सची॥
उबरे जे छत्रिय छुद्र भूतल सोधि सोधि सँहारिहौं।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँडहुँ धर्म निर्दय पारिहौं॥२०९॥

राम–[दो०] भृगुकुल-कमल-दिनेस सुनि, ज्योति सकल संसार।
क्यो चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ जसभार॥२१०॥

परशुराम–[सो०] राम सुबंधु सँभारि, छोडत हौं सर प्रानहर।
देहु हथ्यारन डारि हाथ समेतिन वेगि दै[1]॥२११॥

---

(१) वेगि दै = शीघ्रता से।

[पद्धटिका छंद]

राम—सुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि।
तप विशिख असेसन की जो अग्नि॥
सब विशिख छाँडि सहिहौं अखंड।
हर-धनुख कर्‌यौ जिन खंड खंड॥२१२॥

[सवैया]

परशुराम—बान हमारेन के तनत्रान विचारि विचारि विरंचि करे हैं।
गोकुल ब्राह्मन नारि नपुंसक जे जग दीन सुभाव भरे हैं॥
राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नंद तिहारे गुरू जिनते ऋखि वेख किये उबरे हैं॥२१३॥

[षट्पद]

राम—भगन भयो हर-धनुख साल तुमको अब सालै।
वृथा होइ विधि-सृष्टि ईस आसन ते चालै॥
सकल लोक संहरहु सेस सिर ते धर डारै।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होहिं सबही तम भारै॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केसव बुडि जाहि बरु।
भृगुनंद सँभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त शरु॥२१४॥

[स्वागता छंद]

राम राम जब कोप कर्‌यो जू।
लोक लोक भय भूरि भर्‌यो जू॥

वामदेव[1] तब आपुन आये ।
राम देव दोऊ समुझाये ॥२१५॥

[दो०] महादेव को देखि कै, दोऊ राम विसेस ।
कीन्हों परम प्रनाम उन, आसिस दियो असेस ॥२१६॥

[चतुष्पदी]

महादेव–भृगुनंदन सुनिए मन महँ गुनिए रघुनंदन निर्दोषी ।
निजु[2] ये अविकारी सब सुखकारी सबही विधि सतोषी ।
एकै तुम दोऊ और न कोऊ एकै नाम कहायौ ।
आयुर्बल खूट्यौ धनुष जो टूट्यौ मैं तनमन सुख पायौ२१७

[पद्धटिका छंद]

तुम अमल अनंत अनादि देव ।
नहिं वेद बखानत सकल भेव ॥
सबको समान नहिं वैर नेह ।
सब भक्तन कारन धरत देह ॥२१८॥
अब आपनपौ पहिचानि विप्र ।
सब करहु आगिलौ काज छिप्र ॥
तब नारायन को धनुख जानि ।
भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि ॥२१९॥

[मोटनक छंद]

नारायन कौ धनुबान लियो ।
ऐंच्यो हँसि देवन मोद कियो ॥

---

(१) वामदेव = महादेव । (२) निजु = निश्चय ।

रघुनाथ कहेउ अब काहि हनों।
त्रैलोक्य कँप्यो भय मान घनो ॥२२०॥
दिग्देव दहे बहु बात बहे।
भूकंप भये गिरिराज ढहे॥
आकास विमान अमान छये।
हा हा सबही यह शब्द रये ॥२२१॥

[शशिवदना छद]

परशुराम—जग गुरु जान्यो। त्रिभुवन मान्यो॥
मम गति मारौ। हृदय विचारौ ॥२२२॥

[दो०] विषयी की ज्यों पुष्पशर, गति को हनत अनग।
रामदेव त्यौंहीं कियो, परशुराम गति भग ॥२२३॥

[चतुष्पदी छद]

सुर पुर गति भानी सासन मानी भृगुपति को सुख भारो।
आशिष रसभीने सब सुख दीने अब दसकठहि मारो ॥२२४॥

[दो०] सोवत सीतानाथ[1] के, भृगुमुनि दीन्हीं लात।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात॥२२५॥

[सवैया]

ताडका तारि सुबाहु सँहारि कै गैातम नारि के पातक टारे।
चाप हत्यो हर को हँसि कै तब देव अदेव हुते सब हारे॥
सीतहि ब्याहि अभीत चल्यौ गिरि गर्व चढ़े भृगुनंद उतारे।
श्रीगरुड़ध्वज को धनु लै रघुनदन औधपुरी पगुधारे ॥२२६॥

---

(१) सीतानाथ = विष्णु।

अयोध्या-आगमन

[सुमुखी छंद]

सब नगरी बहु सोभ रये। जहँ तहँ मंगल चार ठये ॥
बरनत हैं कविराज बने। तन मन बुद्धि विवेक सने ॥२२७॥

[मोटनक छंद]

ऊँची बहु वर्ण पताक लसै। मानो पुर दीपति सी दरसै ॥
देवीगण व्योम विमान लसैं। शोभैं तिनके मुख अंचल सैं ॥२२८॥

[तामरस छंद]

घर घर घंटन के रव बाजैं। बिच बिच संख जु झालरि साजैं ॥
पटह पखाउज आवझ[1] सोहैं। मिलि सहनाइन सों मन मोहैं ॥२२९॥

[हीरक छंद]

सुंदरि सब सुंदर प्रति मंदिर पर यों बनी।
मोहन गिरि शृंगन पर मानहुँ महि मोहनी ॥
भूषनगन भूषित तन भूरि चितन चोरहीं।
देखति जनु रेखति तनु बान नयन कोरहीं ॥२३०॥

[सुंदरी छंद]

शंकर शैल चढ़ी मन मोहति।
सिद्धन की तनया जनु सोहति ॥
पद्मन ऊपर पद्मिनि मानहुँ।
रूपन ऊपर दीपति जानहुँ ॥२३१॥

---

(१) आवझ = ताशा।

[विशेषक छंद]

एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे।
मोहति हैं मन मानहुँ चाँदनि चंद धरे॥
नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी।
मानहुँ रागिनि राजति है अनुराग रँगी॥२३२॥
नील निचोलन को पहिरे यक चित्त हरे।
मेघन की द्युति मानहुँ दामिनि देह धरे॥
एकन के तन सूच्छम सारि जराय जरी।
सूर-करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी॥२३३॥

[तोटक छंद]

बरखै कुसुमावलि एक घनी।
शुभ शोभन कामलता सी बनी॥
बरखै फुल फूलन लायक[1] की।
जनु हैं तरुनी रतिनायक की॥२३४॥

[दो०] भीर भये गज पर चढे, श्रीरघुनाथ विचारि।
तिनहिं देखि बरनत सबै, नगर नागरी नारि॥२३५॥

[तोटक छंद]

तमपुंज लियौ गहि भानु मनौ।
गिरि-अंजन ऊपर सोम भनौ॥

---

(१) लायक = लाजक, लावा; धान की खील।

मनमत्थ विराजत सोभ तरे[1]।
जनु भासत लोभहि दान करे ॥ २३६ ॥

[मरहट्टा छंद]

आनंद प्रकासी सब पुरबासी करत ते दौरा दौरी।
आरती उतारै सरवस वारै अपनी अपनी पौरी ॥
पढ़ि मंत्र अशेषनि करि अभिषेकनि आशिष दे सविशेषै।
कुंकुम-कर्पूरनि मृगमद-चूरनि वर्षति वर्षा वेषै ॥२३७॥

[आभीर छंद]

यहि विधि श्रीरघुनाथ। गहे भरत को हाथ ॥
पूजत लोग अपार। गये राजदरबार ॥ २३८ ॥
गये एकही बार। चारों राजकुमार ॥
सहित वधूनि सनेह। कौशल्या के गेह ॥ २३९ ॥

[त्रिभंगी छंद]

बाजे बहु बाजैं तारनि साजैं सुनि सुर लाजैं दुख भाजैं।
नाचै नव नारी सुमन सिँगारी गति मनुहारी सुख साजैं ॥
बीनानि बजावैं गीतनि गावैं मुनिनि रिझावैं मन भावैं।
भूखन पट दीजै सब रस भीजै देखत जीजै छबि छावैं ॥२४०॥

[सो०] रघुपति पूरण चंद, देखि देखि सब सुख मढैं।
दिन दूने आनंद, ता दिन तैं तेहि पुर बढैं ॥ २४१ ॥

---

(१) सोभ तरे = शृंगार के नीचे। (पाठांतर) 'जनु राजत काम सिँगार तरे'।

अयोध्या कांड

रामवनगमन

[दो०] रामचंद्र लक्ष्मण सहित, घर राखे दशरत्थ।
बिदा कियो ननसार[1] को, सँग शत्रुघ्न भरत्थ ॥ १ ॥

[तोटक छंद]

दशरत्थ महा मन मोद रये। तिन बोलि वशिष्ठहिं मंत्र लये ॥
दिन एक कहो शुभ शोभ रयो। हम चाहत रामहिं राज दयो ॥२॥
यह बात भरत्थ की मातु सुनी। पठऊँ वन रामहिं बुद्धि गुनी ॥
तेहिं मंदिर मैं नृप सों विनयो। वर देहु, हतो हमको जो दयो ॥३॥
नृप बात कही हँसि हेरि हियो।
"वर माँगि सुलोचनि मैं जो दियो" ॥
"नृपता सुविशेष भरत्थ लहैं।
वरषै वन चौदह राम रहैं" ॥ ४ ॥

[पद्धटिका छंद]

यह बात लगी उर वज्र तूल।
हिय फाट्यो ज्यों जीरन दुकूल ॥
उठि चले विपिन कहँ सुनत राम।
तजि तात मात तिय बंधु धाम ॥ ५ ॥

---

(१) ननसार = ननहाल।

कौशल्या और राम

[मौक्तिकदाम छंद]

गये तहँ राम जहाँ निज मात।
कही यह बात कि हैं बन जात॥
कछू जनि जी दुख पावहु माइ।
सो देहु अशीष मिलौं फिरि आइ॥ ६॥

कौशल्या—रहौ चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु।
न देखि सकै तिनके उर दाहु॥
लगी अब बाप तुम्हारेहि बाइ।
करै उलटी बिधि क्यों कहि जाइ॥ ७॥

[ब्रह्मरूपक छंद]

राम—अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्राण जात।
राज बाप मोल लै करै जो दीह पोषि गात॥
दास होइ पुत्र होइ शिष्य होइ कोइ माइ।
शासना[1] न मानई तौ कोटि जन्म नर्क जाइ॥ ८॥

[हरनी छंद]

कौशल्या—मोहि चलौ बन संग लियै। पुत्र तुम्हैं हम देखि जियै॥
औधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज भरत्थ करै॥९॥

[तोमर छंद]

राम—तुम क्यों चलो बन आजु। जिन सीस राजत राजु॥
जिय जानिए पतिदेव। करि सर्वभाँतिन सेव॥१०॥

---

(१) शासना = आज्ञा।

[दो०] मनसा वाचा कर्मणा, हम सों छाँडो नेहु।
राजा को विपदा परी, तुम तिनकी सुधि लेहु ॥ ११ ॥

सीता प्रति राम का उपदेश

[पद्धटिका छंद]

उठि रामचंद्र लक्ष्मण समेत।
तब गये जनकतनया-निकेत ॥
राम—सुनु राजपुत्रिके एक बात।
हम बन पठये हैं नृपति तात ॥ १२ ॥
तुम जननि-सेव कहँ रहहु वाम।
कै जाहु आजुही जनक-धाम ॥
सुनु चंद्रवदनि गजगमनि ऐनि।
मन रुचै सो कीजै जलजनैनि ॥ १३ ॥

[नाराच छंद]

सीता—न हौं रहौं, न जाहुँ जू विदेह-धाम को अबै।
कहा जो बात मातु पै सो आजु मैं सुनी सबै ॥
लगे छुधाहि माँ भली, विपत्ति माँझ नारियै।
पियास त्रास नीर, वीर युद्ध मैं सम्हारियै ॥ १४ ॥

[सुप्रिया छंद]

लक्ष्मण—वन महँ विकट विविध दुख सुनिए।
गिरि-गहवर मग अगमहि गुनिए ॥
कहुँ अहि हरि, कहुँ निशिचर चरहीं।
कहँ दव दहन दुसह दुख दहहीं ॥ १५ ॥

[दडक छद]

सीता—केसौदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास
दुख कौ निवास विष मुखहू गह्यौ परै।
वायु को वहन, दिन दावा को दहन, बडी
बाडवा-अनल-ज्वाल-जाल मे रह्यौ परै॥
जीरन जनम जात जोर जुर[1] घोर पीर
पूरण प्रकट परिताप क्यों कह्यौ परै।
सहिहौं तपन ताप, पति के प्रताप, रघु-
वीर को विरह वीर मोसों न सह्यौ परै॥१६॥

लक्ष्मण प्रति राम का उपदेश

[विशेपक छद]

राम—धाम रहौ तुम लक्ष्मण राज की सेव करौ।
मातनि के सुनि तात, सो दीरघ दु:ख हरौ॥
आइ भरत्थ कहा धौं करै जिय भाय गुनौ।
जौ दुख देइँ तो लै उरगौ[2], यह बात सुनौ॥१७॥
लक्ष्मण—[दो०] शासन मेटो जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ।
ऐसी कैसे बूझिए, घर सेवक, वन नाथ॥१८॥

वनयात्रा

[द्रुतविलबित छद]

विपिन-मारग राम विराजहीं।
सुखद सुदरि सोदर भ्राजहीं॥

(१) जुर = ज्वर। (२) उरगौ = अगीकार करो, सहो।

विविध श्रीफल सिद्धि मनो फल्यो।
सकल साधन सिद्धिहि लै चल्यो ॥१९॥

[दो०] राम चलत सब पुर चल्यो, जहँ तहँ सहित उछाह।
मनौ भगीरथ-पथ चल्यो, भागीरथी-प्रवाह ॥२०॥

[चचला छंद]

रामचद्र धाम ते चले सुने जबै नृपाल।
बात को कहै सुनै, सो ह्वै गये महा विहाल॥
ब्रह्मरध्र फोरि जीव यौं मिल्यो द्युलोक जाइ।
गेह[1] चूरि ज्यौं चकोर चद्र मै मिलै उडाइ ॥२१॥

[चचरी छद]

कौन हौ, कित ते चले, कित जात हौ, केहि काम जू।
कौन की दुहिता, बहू, कहि कौन की यह वाम जू॥
एक गाँउँ रहौ कि साजन मित्र बधु बखानिए।
देश के, परदेश के, किधौं पथ की पहिचानिए ॥२२॥

[जगमोहन दडक]

किधौं यह राजपुत्री, वरहीं वर्‍यो है किधौं,
उपदि[2] वर्‍यो है यहि सोभा अभिरत हौ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केसौदास
जात तपोवन सिव वैर सुमिरत हौ।

---

(१) गेह = पिंजडा। (२) उपदि = गुरुजन की इच्छा के विरुद्ध अपनी इच्छा से।

किधौ मुनि शापहत, किधौं ब्रह्मदोषरत,
किधौ सिद्धियुत, सिद्ध परम विरत हौ।
किधौ कोऊ ठग हौ ठगोरी लीन्हे, किधौं तुम
हरि हर श्री हौ शिवा चाहत फिरत हौ ॥२३॥

[मत्त-मातग-लीला-करन दडक]

मेघ-मदाकिनी[1] चारु सौदामिनी
रूप रूरे लसै देहधारी मनौ।
भूरि भागीरथी भारती हसजा
अस के हैं मनौ भाग भारे मनौ ॥
देवराजा लिये देवरानी मनौ
पुत्र संयुक्त भूलोक मे सोहिए।
पक्छ दू सधि सध्या सधी है मनौ
लच्छि ये स्वच्छ प्रत्यच्छ ही मोहिए ॥२४॥

[अन गशेखर दडक]

तडाग नीर-हीन ते सनीर होत केसौदास
पुडरीक-भु ड भौंर-मडलीन मडहीं।
तमाल वल्लरी समेत सूखि सूखि के रहे
ते बाग फूलि फूलि कै समूल सूल खडहीं ॥
चितै चकोरनी चकोर, मोर मोरनी समेत
हस हसिनी समेत, सारिका सवै पढ़ै।

---

(१) मदाकिनी = आकाश-गंगा।

जहीं जहीं विराम लेत रामजू तहीं तहीं
अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सो बढ़ै ॥२५॥

[सुंदरी छंद]

घाम को राम समीप महाबल।
सीतहि लागत है अति सीतल॥
ज्यौं घन-संयुत दामिनि के तन।
होत है पूषन के कर[1] भूषन ॥२६॥
मारग की रज तापित है अति।
केशव सीतहि सीतल लागति॥
ज्यौं पद-पकज ऊपर पाँयनि।
दै जो चलै तेहि ते सुखदायनि ॥२७॥

[दो०] प्रति पुर औ' प्रति ग्राम की, प्रति नगरन की नारि।
सीताजू को देखिकै, बरनत है सुखकारि ॥२८॥

[जगमोहन दंडक]

वासों मृग-अंक कहै, तोसों मृगनैनी सब,
वह सुधाधर, तुहूँ सुधाधर मानिए।
वह द्विजराज, तेरे द्विजराजि राजै, वह
कलानिधि, तुहूँ कला-कलित बखानिए॥
रत्नाकर के है दोऊ केसव प्रकास कर,
अंबर विलास कुवलय हित मानिए।

---

(१) पूषन के कर = सूर्य की किरणें।

वाके अति सीत कर, तुहूँ सीता सीतकर,
चद्रमा सी चद्रमुखी सब जग जानिए ।।२९।।
कलित कलक-केतु, केतु-अरि, सेत गात,
भोग-योग को अयोग, रोग ही को थल सौं ।
पून्यौई को पूरन पै प्रतिदिन दूनो दूनो
छन छन छीन होत छीलर[1] को जल सौं ।।
चद्र सौ जो बरनत रामचद्र की दुहाई
सोई मति मद कवि केसव कुसल सौ ।
सुदर सुवास अरु कोमल अमल अति
सीताजू को मुख सखि केवल कमल सौं ।।३०।।
एके कहै अमल कमल मुख सीताजू को
एक कहैं चद्र सम आनँद को कद री ।
होइ जौ कमल तौ रयनि मे न सकुचै री
चद जौ तौ बासर न होइ द्युति मद री ।।
वासर ही कमल रजनि ही मे चद्र मुख
बासर हू रजनि विराजै जगबद री ।
देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चंद
तातै मुख मुखै, सखी, कमलौ न चंद री[2] ।।३१।।

[दे।०] सीता नयन चकोर सखि, रविवशी रघुनाथ ।
रामचद्र सिय कमल मुख, भलो बन्यो है साथ ।।३२।।

---

(१) छीलर = चुल्लू, अँजुली । (२) तातै · चद री = इससे इस मुख के समान यही मुख है, कमल और चद्र इसके समान नहीं हैं ।

[विजय छंद]

कहु बाग तडाग तरंगनि तीर
तमाल की छाँह बिलोकि भली।
घटिका इक बैठत हैं सुख पाय
बिछाय तहाँ कुस कास थली॥
मग को श्रम श्रीपति दूरि करै
सिय के सुभ बाकल अंचल सौं।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव
चंचल चारु दृगंचल सौं॥३३॥

[सो०] श्री रघुबर के इष्ट, अश्रु-वलित सीता-नयन।
साँची करी अदृष्ट, झूँठी उपमा मीन की॥३४॥

[दो०] मारग यौं रघुनाथ जू, दुख सुख सबही देत।
चित्रकूट पर्वत गये, सोदर सिया समेत॥३५॥

भरत प्रत्यागमन

[दोधक छंद]

आनि भरत्त पुरी अवलोकी।
थावर जंगम जीव ससोकी॥
भाट नहीं विरदावलि साजै।
कुंजर गाजैं न दुंदुभि बाजैं॥३६॥
राजसभा न विलोकिय कोऊ।

मदिर मातु विलोकि अकेली।
ज्यौं बिन वृक्ष विराजति वेली ॥ ३७ ॥

[तोटक छद]

तब दीरघ देखि प्रणाम कियौ।
उठि कै उन कठ लगाइ लियौ ॥
न पियौ जल सभ्रम भूलि रहे।
तब मातु सौं बैन भरत्थ कहे ॥ ३८ ॥

भरत कैकेयी का प्रश्नोत्तर

[विजय छद]

"मातु ! कहाँ नृप ?" "तात ! गये सुर-
लोकहिं," "क्यों ?" "सुत-शोक लये।"
"सुत कौन ?" "सुराम" "कहाँ है अबै ?"
"बन लक्ष्मण सीय समेत गये ॥"
"बन काज कहा कहि।" "केवल मो सुख,"
"तोको कहा सुख यामैं भये ?"
"तुमको प्रभुता" "धिक तोको !
कहा, अपराध बिना सिगरेई हये ?" ॥ ३९ ॥

[दो०] "भर्त्ता-सुत-विद्वेषिनी, सबही कौं दुखदाइ।"
यह कहि देखे भरत तब, कौशल्या के पाइ ॥ ४० ॥

भरत-कौशल्या-वार्ता

[तोटक छंद]

तब पायन जाइ भरत्थ परे।
उन भेटि उठाइ कै अ क भरे॥
सिर सूँघि विलोकि बलाइ लयी।
सुत तो बिन या विपरीत भयी॥ ४१॥

[तारक छंद]

भरत—सुनु मातु भयी यह बात अनैसी।
जु करी सुत भर्तृ-विनाशिनि जैसी॥
यह बात भयी अब जानत जाके।
द्विज दोष परै सिगरे सिर ताके॥ ४२॥
जिनके रघुनाथ-विरोध बसै जू।
मठधारिन के तिन पाप ग्रसैं जू॥
रस राम रस्यौ मन नाहिन जाकौ।
रन मैं नित होइ पराजय ताकौ॥ ४३॥

कौशल्या—जनि सौंह करौ तुम पुत्र सयाने।
अति साधुचरित्र तुम्हैं हम जाने॥
सबकौं सब काल सदा सुखदाई।
जिय जानति हौं सुत ज्यौं रघुराई॥ ४४॥

दशरथ-दाह

[चचरी छ द]

'हाइ' 'हाइ' जहाँ तहाँ सब ह्वै रही सिगरी पुरी।
धाम धामनि सुदरी प्रगटीं सबै जे हुतीं दुरी॥
लै गये नृपनाथ को शव लोग श्रीसरयू तटी।
राजपत्नि समेत पुत्रन विप्रलाप गढ़ी रटी[1] ॥४५॥

[सोमराजी छ द]

करी अग्नि चर्चा। मिटी प्रेत चर्चा॥
सबै राजधानी। भई दीन वानी॥४६॥

[कुमारललिता छ द]

क्रिया भरत कीनी। वियोग रस भीनी।
सजी गति नवीनी। मुकुद पद लीनी॥४७॥

भरत का चित्रकूट-गमन

[तोटक छ द]

पहिरे बकला सु जटा धरिकै।
निज पाँयनि पंथ चले अरिकै॥
तरि गग गये गुह सग लिये।
चितकूट बिलोकत छाँडि दिये॥४८॥

[मदनमोदक छ द]

सब सारस हस भये खग खेचर, वारिद ज्यों बहुवारन गाजे।
वन के नर वानर किन्नर बालक लै मृग ज्यों मृगनायक भाजे॥

(१) विप्रलाप गढी रटी = प्रलाप का समूह रटकर, बहुत सा प्रलाप करके।

तजि सिद्ध समाधिन केसव दीरघ दौरि दरीन मे आसन साजे।
भूतल भूधर हाले अचानक आइ भरत्थ के दुदुभि बाजे ॥४९॥

[दो०] रामचद्र लछमन सहित, सोभित सीता सग।
केसवदास सहास उठि, चढ़े धरनिधर-शृग ॥५०॥

[मोहन छद]

लक्ष्मण—देखहु भरत चमू सजि आये।
जानि अबल हमकों उठि धाये ॥
हींसत हय, बहु वारन गाजै।
जहँ तहँ दीरघ दुंदुभि बाजै ॥५१॥

[तारक छद]

गजराजनि ऊपर पाखर सोहै।
अति सुदर सीस सिरोमनि मोहै ॥
मनि घूँघुर घटन के रव बाजै।
तडिता-युत मानहुँ वारिद गाजै ॥५२॥

[विजय छद]

युद्ध को आजु भरत्थ चढ़े, धुनि दुदुभि की दसहूँ 'दिसि धाई।
प्रात चली चतुरंग चमू, बरनी सो न केसव कैसेहुँ जाई ॥
यों सबके तनत्राननि मै झलकी अरुनोदय की अरुनाई।
अ तर ते जनु रजन को रजपूतन की रज ऊपर आई ॥५३॥

[तोटक छंद]

उठिकै धर धारि अकास चली।
बहु चचल वाजि खुरीन दली ॥

भुव हालति जानि अकास हिये।
जनु थभन ठौरनि ठौर किये॥ ५४॥

[तारक छंद]

रन राजकुमार अरूझहिंगे जू।
अतिसम्मुख घायनि जूझहिंगे जू॥
जन ठौरनि ठौरनि भूमि नवीने।
तिनके चढ़िबे कहँ मारग कीने॥ ५५॥

[तोटक छंद]

सीता—रहि पूरि विमाननि व्योमथली।
तिनको जनु टारन धूरि चली॥
परिपूरि अकासहिं धूरि रही।
सु गयो मिटि सूर प्रकास सही॥ ५६॥

[दो०] अपने कुल को कलह क्यौं, देखहिं रवि भगवंत।
यहै जानि अंतर कियौ, मानो मही अनंत॥ ५७॥

[तोटक छंद]

बहु तामहँ दीह पताक लसै।
जनु धूम मै अग्नि की ज्वाल बसै॥
रसना किधौ काल कराल घनी।
किधौं मीचु नचै चहुँ ओर बनी॥ ५८॥

[दो०] देखि भरत की चल ध्वजा, धूरिन मे सुख देत।
युद्ध जुरन कौ मनहुँ प्रति-योधन बोले लेत॥ ५९॥

लक्ष्मण का कोप

[दण्डक छंद]

लक्ष्मण—मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु,
मेटि पारौं दीरघ वचन निज गुर कौ।
सीतानाथ सीता साथ बैठे देखि छत्रतर,
यहि सुख शोषौं शोक सबही के उर कौ।
केसौदास, सविलास बीस बिसे बास होइ,
कैकेयी के अंग अंग शोक पुत्रजुर कौ।
रघुराज जू को साज सकल छिडाइ लेउँ
भरतहि आजु राज देउँ प्रेत-पुर कौ ॥ ६० ॥

[दो०] एक राज मैं प्रगट जहँ, द्वै प्रभु केसवदास।
तहाँ बसत है रैनदिन, मूरतिवत विनास ॥ ६१ ॥

राम-भरत-मिलन

[कुसुमविचित्रा छंद]

तब सबै सेना वहि थल राखी।
मुनि जन लीन्हे सँग अभिलाखी ॥
रघुपति के चरनन सिर नाये।
उन हँसि कै गहि कंठ लगाये ॥ ६२ ॥

[दोधक छंद]

मातु सबै मिलिबे कहँ आईं।
ज्यौं सुत कौं सुरभी सु लवाईं ॥

लक्ष्मण स्यों उठिकै रघुराई।
पाँयन जाय परे दोउ भाई ॥६३॥
मातनि कंठ उठाय लगाये।
प्रान मनो मृत देहनि पाये ॥
आइ मिली तब सीय सभागी।
देवर सासुन के पग लागी ॥६४॥

[तोमर छंद]

तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ ॥
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रम तैं उठीं सब रोइ ॥६५॥

[दोधक छंद]

आँसुन सों सब पर्वत धोये। जंगम को ? जड जीवहु रोये ॥
सिद्ध बधू सिगरीं सुन आई। राजबधू सबई समुझाई ॥६६॥

[मोहन छंद]

धरि चित्त धीर। गये गंग तीर ॥
शुचि ह्वै सरीर। पितु तर्पि नीर ॥६७॥

[तारक छंद]

भरत—घर को चलिए अब श्रीरघुराई।
जन हौं, तुम राज सदा सुखदाई ॥
यह बात कही जल सौं गल भीन्यौ।
उठि सोदर पाइँ परे तब तीन्यौ ॥६८॥

[दोधक छंद]

श्रीराम—राज दियो हमको बन रूरो ।
राज दियो तुमको अब पूरो ॥
सो हमहूँ तुमहूँ मिलि कीजै ।
बाप कौ बोलु न नेकहु छीजै ॥६९॥

[दो०] राजा कौ अरु बाप कौ, बचन न मेटै कोइ ।
जौ न मानिए भरत तौ, मारे को फल होइ ॥७०॥

[स्वागता छंद]

भरत—मद्यपानरत स्त्रीजित होई ।
सन्निपातयुत बातुल जोई ॥
देखि देखि तिनको सब भागै ।
तासु बात हति पाप न लागै ॥७१॥
ईश[1] ईश[2] जगदीश[3] बखान्यो ।
वेदवाक्य बल ते पहिचान्यो ॥
ताहि मेटि हठिकै रहिहौ जौ ।
गंग[4] तीर तन को तजिहौं तौ ॥७२॥

[दो०] मौन गही यह बात कहि, छोड्यौ सबै विकल्प[5] ।
भरत जाइ भागीरथी-तीर कर्‌यौ संकल्प ॥७३॥

---

(१) ईश = विष्णु । (२) ईश = महादेव । (३) जग-
[illegible] । (४) [illegible] । (५) विकल्प = विचार ।

मंदाकिनी कृत भरतोद्बोधन

[इद्रवज्रा छद]

भागीरथी रूप अनूप कारी।
चद्राननी लोचन-कज-धारी॥
वाणी बखानी मुख तत्त्व सोध्यौ।
रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यौ॥ ७४॥

[उपेद्रवज्रा छद]

अनेक ब्रह्मादि न अत पायौ।
अनेकधा वेदन गीत गायौ॥
तिन्हैं न रामानुज बधु जानौ।
सुनौ सुधी केवल-ब्रह्म मानौ॥ ७५॥
निजेच्छया भूतल देहधारी।
अधर्म-सहारक धर्म-चारी॥
चले दशग्रीवहिँ मारिबे को।
तपी व्रती केवल पारिबे[1] को॥ ७६॥
उठो हठी होहु न काज कीजै।
कहै कछू राम, सो मानि लीजै॥
अदोष तेरी सुत मातु सोहै।
सो कौन माया इनको न मोहै॥ ७७॥

---

(१) पारिबे = पालने।

[दो०] यह कहि कै भागीरथी, केसव भई अदृष्ट ।
भरत कह्यो तब राम सौं, देहु पादुका इष्ट ॥७८॥

भरत का लौटना

[उपेंद्रवज्रा छंद]

चले बली पावन पादुका लै ।
प्रदक्षिणा राम सियाहु को दै ॥
गये ते नंदीपुर बास कीनौ ।
सबंधु श्रीरामहि चित्त दीनौ ॥ ७९ ॥

[दो०] केसव भरतहि आदि दै, सकल नगर के लोग ।
वन समान घर घर बसे, सकल विगत संभोग ॥८०॥

(इति अयोध्या कांड)

अरण्य कांड

राम-अत्रि-मिलन

[भरतोद्धता छंद]

चित्रकूट तब रामजू तज्यो।
जाइ यज्ञथल अत्रि को भज्यो।
राम लक्ष्मण समेत देखियो।
आपनो सफल जन्म लेखियो ॥१॥

[चंद्रवर्त्म छंद]

स्नान दान तप जाप जो करियो।
सोधि सोधि पन जो उर धरियो।
योग याग हम जालगि गहियो।
रामचंद्र सब को फल लहियो ॥२॥

[वंशस्थ छंद]

अनेकधा पूजन अत्रिजू कर्‌यो।
कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथजू धर्‌यो[1]।
पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ ॥३॥

सीता-अनसूया-मिलन

[दो०] पतिव्रतन की देवता, अनसूया सुभ गात।
सीताजू अवलोकियो, जरा सखी के साथ ॥४॥

---

(१) धर्‌यो = ग्रहण की, स्वीकार की।

[चतुष्पदी छंद]

शिर श्वेत विराजै कीरति राजै जनु केशव तप-बल की।
तनु वलित पलित जनु सकल वासना निकरि गई थल थल की ॥
काँपति शुभ ग्रीवा सब अँग सींवा देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेशति, 'या जग मे कछु नाहीं' ॥५॥

[प्रमिताक्षरा छंद]

हरवाइ[1] जाय सिय पाइँ परी।
ऋषि-नारि सूँघि सिर गोद धरी ॥
बहु अंगराग अँग अंग रये।
बहु भाँति ताहि उपदेश दये ॥६॥

[स्रग्विनी छंद]

राम आगे चले, मध्य सीता चली।
बंधु पाछे भये, सोभ सोभै भली ॥
देखि देही सबै कोटिधा कै भनौ।
जीव-जीवेस के बीच माया मनौ ॥७॥

विराध-वध

[मालती छंद]

विपिन विराध बलिष्ठ देखियो।
नृप-तनया भयभीत लेखियो ॥
तब रघुनाथ बाण कै हयो।
निज निर्वाण-पंथ को ठयो ॥८॥

---

(१) हरवाइ = शीघ्रता से।

[दो०] रघुनायक सायक धरे, सकल लोक सिरमौर।
गये कृपा करि भक्तिवश, ऋषि अगस्त्य के ठौर ॥९॥

अगस्त्य-मिलन

[वसततिलका छंद]

श्रीराम लक्ष्मण अगस्त्य सनारि देख्यो। सीता सहित
स्वाहा समेत सुभ पावक रूप लेख्यो॥
साष्टाग छिप्र अभिवदन जाइ कीन्हो।
सानद आशिष अशेष ऋषीश दीन्हो ॥१०॥
बैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे।
सीता समेत रघुनाथ सबधु पूजे॥
जाके निमित्त हम यज्ञ यज्यो[1] सो पायो।
ब्रह्माडमडन स्वरूप जो वेद गायो ॥११॥

[पद्धटिका छद]

ब्रह्मादि देव जब विनय कीन।
तट छीरसिंधु के परम दीन॥
तुम कह्यौ देव अवतरहु जाइ।
सुत हौं दशरथ को होतु आइ ॥१२॥
हम तब तै मन आनंद मानि।
मन चितवत तव आगमन जानि॥
ह्याँ रहिजै करिजै देव-काजु।
मम फूलि फल्यो तप-वृक्ष आजु ॥१३॥

---

(१) यज्ञ यज्यो = यज्ञ किये।

[पृथ्वी छंद]

श्रीराम—अगस्त्य ऋषिराज जू वचन एक मेरो सुनौ।
प्रशस्त सब भाँति भूतल सुदेश जी मैं गुनौ॥
सनीर तरु खंड मंडित समृद्ध शोभा धरै।
तहाँ हम निवास की विमल पर्णशाला करैं॥१४॥

अगस्त्य— [पद्मावती छंद]

यद्यपि जग-कर्त्ता-पालक-हर्त्ता परिपूरण वेदन गाये।
अति तदपि कृपा करि मानुष वपु धरि थल पूछन हमसों आये॥
सुनि सुर-वर-नायक राक्षस-घायक रक्षहु मुनिजन यश लीजै।
शुभ गोदावरि-तट विशद पंचवट पर्णकुटी तहँ प्रभु कीजै॥१५॥

[दो०] केशव कहे अगस्त्य के पंचवटी के तीर।
पर्णकुटी पावन करी, रामचंद्र रणधीर॥१६॥

पंचवटी-वन-वर्णन

[त्रिभंगी छंद]

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल-कुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी पियरस पूरी, वन वन प्रति नाचति डोलैं॥
सारी शुक पंडित, गुणगण-मंडित, भावनि मैं अरथ बखानै।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मदन सरति मधु सब जानै॥१७॥

लक्ष्मण— [सवैया]

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचघटीहूँ घटी, जग जीव यतीन की छूटी तटी[1]॥

(१) तटी = समाधि।

अघ-ओघ की वेरी कटी विकटी, निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी[1] ।
चहुँओरन नाचति मुक्तिनटी, गुण धूरजटी वनपचवटी ॥१८॥

[हाकलिका छद]

शोभत दडक की रुचि वनी । भाँतिन भाँतिन सुदर घनी ॥
मेव बडे नृप की जनु लसै । श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै ॥१९॥
बेर भयानक सी अति लगै । अर्क-समूह जहाँ जगमगै ॥
नैनन को बहुरूपन ग्रसै । श्रीहरि की जनु मूरति लसै ॥२०॥

[दोधक छ द]

राम—पाडव की प्रतिमा सम लेखौ ।
अर्जुन भीम[2] महामति देखौ ॥
है सुभगा सम दीपति पूरी ।
सिंदुर की तिलकावलि रूरी ॥ २१ ॥
राजति है यह ज्यौं कुलकन्या ।
धाइ विराजति है सँग धन्या ॥
केलि-थली जनु श्री गिरिजा की ।
शोभ धरे शितकठ[3] प्रभा की ॥ २२ ॥

गोदावरी-वर्णन

[मनहरन छद]

अति निकट गोदावरी पाप-सहारिणी ।
चल तरग तुंगावली चारु सचारिणी ।

---

(१) गटी = गठरी । (२) भीम = अम्लबेतस, भीमसेन ।
(३) शितकठ = मयूर, महादेव ।

अलि कमल सौगध लीला मनोहारिणी।
बहु नयन देवेश शोभा मनो धारिणी ॥ २३ ॥

[दोधक छंद]

रीति मनो अविवेक की थापी।
साधुन की गति पावत पापी ॥
कुजज[1] की मति सी बडभागी।
श्री हरिमदिर[2] सौं अनुरागी ॥ २४ ॥

[अमृतगति छंद]

निपट पतिव्रत धरणी। जग जन के दुख हरणी ॥
निगम सदा गति सुनिए। अगति महापति गुनिए ॥ २५ ॥

[दो०] विषमय[3] यह गोदावरी, अमृतन को फल देति।
केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति ॥ २६ ॥

वन-विलास-वर्णन

[त्रिभगी छंद]

जब जब धरि वीना प्रगट प्रवीना,
बहु गुण लीना सुख सीता।
पिय जियहि रिझावै, दुखनि भजावै,
विविध बजावै गुण गीता।
तजि मति ससारी विपिन विहारी,
दुख सुखकारी घिरि आवैं ॥

---

(१) कंजज = ब्रह्मा। (२) हरिमदिर = समुद्र, विष्णुस्थान।
(३) विषमय = जल (विष) से परिपूर्ण।

तब तब जग भूषण रिपुकुल-दूषण,
सबको भूषण पहिरावै ॥ २७ ॥

[तोटक छंद]

कबरी कुसुमालि सिखीन दयी।
गज-कुम्भनि हारनि शोभमयी॥
मुकुता शुक सारिक नाक रचे।
कटि केहरि किंकिणि सोभ सचे ॥ २८ ॥
दुलरी कल कोकिल कंठ बनी।
मृग खंजन अंजन भाँति ठनी॥
नृप हंसनि नूपुर शोभ भिरी।
कल हंसनि कंठनि कंठसिरी ॥ २९ ॥
मुख-वासनि वासित कीन तबै।
तृण गुल्म लता तरु शैल सबै॥
जलहू थलहू यहि रीति रमैं।
घन जीव जहाँ तहँ संग भ्रमैं ॥ ३० ॥

[दो०] सहज सुगंधि शरीर की, दिशि-विदिशन अवगाहि।
दूती ज्यो आई लिये, केशव शूर्पनखाहि ॥ ३१ ॥

शूर्पणखा-राम-संवाद

[मरहट्टा छंद]

इक दिन रघुनायक सीय सहायक रतिनायक अनुहारी।
शुभ गोदावरि तट विमल पंचवट बैठे हुते मुरारी॥

छबि देखत ही मन मदन मथ्यो तनु शूर्पणखा तेहि काल।
अति सुदर तनु करि कछु धीरज धरि बोली वचन रसाल ॥३२॥

शूर्पणखा— [सवैया]

किन्नर हौ नर रूप विचच्छन, यच्छ कि स्वच्छ सरीरनि सोहौ।
चित्त-चकोर के चद किधौं, मृग-लोचन चारु विमाननि रोहौ[1]।
अंग धरे कि अनंग हौ केसव अगी अनेकन के मन मोहौ।
वीर जटानि धरे धनु-बान, लिये वनिता वन मे तुम को हौ ॥३३॥

[मनोरमा छद]

राम—हम है दशरत्थ महीपति के सुत।
शुभ राम सुलक्ष्मण नामन सयुत॥
यह शासन दै पठये नृप कानन।
मुनि पालहु मारहु राक्षस के गन ॥ ३४ ॥

शूर्पणखा—नृप रावण की भगिनी गनि मोकहँ।
जिनकी ठकुराइति तीनहु लोकहँ॥
सुनिजै दुखमोचन पकजलोचन।
अब मोहिं करो पतिनी मन रोचन॥ ३५ ॥

[तोमर छद]

तब यों कह्यो हँसि राम। अब मोहिं जानि सबाम॥
तिय जाय लक्ष्मण देखि। सम रूप यौवन लेखि॥ ३६॥

---

(१) रोहौ = आरोहण करते हो, सवार हो जाते हो।

[दोधक छंद]

शूर्पणखा—राम सहोदर मो तन देखौ।
रावण की भगिनी जिय लेखौ॥
राजकुमार रमौ सँग मेरे।
होहिं सबै सुख सपति तेरे॥३७॥

लक्ष्मण—वै प्रभु हौ जन जानि सदाई।
दासि भये महँ कौनि बडाई॥
जो भजिए प्रभु तौ प्रभुताई।
दासि भये उपहास सदाई॥३८॥

[मल्लिका छ द]

हास के विलास जानि। दीह मानखड[1] मानि॥
भक्षिबे को चित्त चाहि। सामुहे भई सियाहि॥३९॥

[तोमर छ द]

तब रामचद्र प्रवीन। हँसि बधु त्यों दृग दीन॥
गुनि दुष्टता सह लीन। श्रुति नासिका बिनु कीन॥४०॥

[दो०] सोन छिछि छूटत वदन, भीम भयौ तेहि काल।
मानो कृत्या कुटिल युत, पावक-ज्वाल कराल॥४१॥

खरदूषण-वध

[तोटक छ द]

गइ शूर्पणखा खरदूषण पै। सजि ल्यायी तिन्है जगभूषण पै॥
शर एक अनेक ते दूरि किये। रवि के कर ज्यौं तमपुज पिये॥४२॥

---

(१) मानखड = अपमान।

[मनोरमा छंद]

वृष के खरदूषण[1] ज्यों खरदूषण।
तब दूरि किये रवि के कुल-भूषण॥
गदशत्रु[2] त्रिदोष ज्यौं दूरि करै वर।
त्रिशिरा शिर त्यौं रघुनंदन के शर॥४३॥
भजि शूर्पणखा गइ रावण पै तब।
त्रिशिरा खरदूषण नाश कहे सब॥
तब शूर्पणखा मुख बात सबै सुनि।
उठि रावण गो सु-मरीच जहाँ मुनि॥४४॥

रावण-मारीच-संवाद

[मनोरमा छंद]

रावण बात कही सिगरी त्यौं।
शूर्पणखाहिं विरूप करी ज्यौं॥
रावण—एकहि राम अनेक सँहारे।
दूषण स्यों त्रिशिरा खर मारे॥४५॥
तू अब होहि सहायक मेरौ।
हौं बहुते गुण मानिहौं तेरौ॥
जो हरि सीतहि ल्यावन पैहै।
वै भ्रमि शोकन ही मरि जैहैं॥४६॥

---

(१) खरदूषण = सूर्य्य। (२) गदशत्रु = वैद्य।

मारीच—रामहिं मानुष कै जनि जानौ।
पूरण चौदह लोक बखानौ॥
जाहु जहाँ तिय लै सु न देखौं।
हौ हरि को जलहूँ थल लेखौं॥४७॥

[सुदरी छद]

रावण—तू अब मोहि सिखावत है शठ।
मैं वश जक्त कियो हठ ही हठ॥
वेगि चलै अब देहि न ऊतरु।
देव सबै जन एक नहीं हरु॥४८॥

[दो०] जाँचि चल्यो मारीच मन, मरण दुहूँ विधि आसु।
रावण के कर नरक है, हरि कर हरिपुर वासु॥४९॥

सीता-राम-मंत्रणा

[सुदरी छद]

राम—राजसुता इक मत्र सुनौ अब।
चाहत हौं भुव-भार हर्यौ सब॥
पावक मै निज देहहि राखहु।
छाय सरीर मृगै अभिलाषहु॥५०॥

[चामर छद]

आइयौ कुरग एक चारु हेम-हीर कौ।
जानकी समेत चित्त मोहि राम वीर कौ।
राजपुत्रिका समीप साधु बधु राखिकै।
हाथ चाप-बाण लै गये गिरीश नाँखिकै॥५१॥

मारीच-वध

[दो०] रघुनायक जब हीं हन्यो, सायक शठ मारीच।
'हा लक्ष्मण' यह कहि गिरेउ, श्रीपति के स्वर नीच ॥५२॥

[निशिपालिका छंद]

सीता—राजतनया तबहिं बोल सुनि यो कह्यो।
जाहु चलि देवर न जात हमपै रह्यो ॥
हेममृग होहि नहिं रैनिचर जानिए।
दीन स्वर राम केहि भाँति मुख आनिए ॥५३॥
लक्ष्मण—शोच अति पोच उर मोच दुख दानिए।
मातु यह बात अवदात[1] मम मानिए ॥
रैनिचर छद्म बहु भाँति अभिलाषहीं।
दीन स्वर राम कबहूँ न मुख भाषहीं ॥५४॥

[चंचला छंद]

पक्षिराज यक्षराज प्रेतराज यातुधान।
देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान ॥
पर्वतारि अर्ब खर्ब सर्व सर्वथा बखानि।
कोटि कोटि सूर चंद्र रामचंद्र दास मानि ॥५५॥

[चामर छंद]

राजपुत्रिका कह्यो, सो और को कहै, सुनै।
कान मूँदि बार बार, शीश बीसधा धुनै ॥

---

(१) अवदात = सत्य, कपट-रहित।

चापकीय[1] रेख खाँचि, देव-साखि दै चले।
नाँघिहैं, ते भस्म होहिं, जीव जे बुरे भले ॥५६॥

सीता-हरण

छिद्र ताकि छुद्रराज लंकनाथ आइयो।
भिच्छु जानि जानकी सो भीख को बोलाइयो ॥
सोच पोच मोचिकै सकोच भीम बेख को।
अंतरिच्छही करी ज्यों राहु चंद्ररेख को ॥५७॥

[दंडक छंद]

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की,
शिखा की धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की।
चित्र की सी पुत्रिका की रूरे बगरूरे माहिं,
सबर छोड़ाइ लई कामिनि की काम की।
पाखंड की श्रद्धा की मठेश बस एकादसी,
लीन्ही कै स्वपचराज साखा सुद्ध साम की।
केशव अदृष्ट साथ जीवजोति जैसी, तैसी
लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की ॥५८॥

सीता-विलाप

[हरिलीला छंद]

सीता—हा राम हा रमन हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ बस जानहु मोहि वीर ॥

---

(१) चापकीय = धनुष से बनाई हुई।

हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ावहु वेगि मोहि।
मार्तंडवंश-यश की सब लाज तोहि ॥५९॥
पक्षी जटायु यह बात सुनत धाइ।
रोक्यो तुरत बल रावण दुष्ट जाइ॥
कीन्हौ प्रचंड रथ छत्र ध्वजा विहीन।
छोड्यो विपक्षि तब भो जब पक्षहीन ॥६०॥

[सयुता छंद]

दशकंठ सीतहि लै चल्यो। अति वृद्ध गीधहि यों दल्यो॥
चित जानकी अधकों कियो। हरि तीनिद्वै अवलोकियो ॥६१॥
पद-पद्म की शुभ घूँघरी। मणिनील-हाटक सों जरी।
जुत उत्तरीय[1] विचारि कै। शुभ डारि दीन गँठारि कै ॥६२॥
[दो०] सीता के पद पद्म कौ, नूपुर पट जनि जानु।
मनहुँ कर्‌यो सुग्रीव घर, राजश्री-प्रस्थानु ॥६३॥

राम-विलाप

[सवैया]

निज देखौं नहीं शुभ गीतहि सीतहि कारण कौन कहौ अबहीं।
अति मोहित कै बन माँझ गई सुर मारग मैं मृग मार्‌यो जहीं॥
कटु बात कछू तुमसौं कहि आई किधौं तेहि त्रास डेराइ रही।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौ वह लक्ष्मण होइ नहीं ॥६४॥

---

(१) उत्तरीय = ओढनी।

राम-जटायु-संवाद

[दोधक छंद]

धीरज सौं अपनो मन रोक्यो।
गीध जटायु पर्‌यो अवलोक्यो॥
छत्र ध्वजा रथ देखि कै बूझेउ।
गीध कहौ रण कौन सों जूझेउ ? ॥६५॥

जटायु—रावण लै गयो राघव सीता।
"हा रघुनाथ" रटै शुभ गीता॥
मै बिन छत्र ध्वजा रथ कीन्हौं।
ह्वै गयो हौं बल-पच्छ-विहीनौ॥६६॥

राम—साधु जटायु सदा बडभागी।
तो मन मो बपु सो अनुरागी॥
छूट्यो शरीर सुनी यह बानी।
रामहि मैं तब ज्योति समानी॥६७॥

[तोटक छंद]

दिशि दच्छिण को करि दाह चले।
सरिता गिरि देखत वृच्छ भले॥
वन अंध कबंध विलोकतहीं।
दोउ सोदर खैंच लिये तबहीं॥६८॥

कबंध-वध

जब खैबेहि को जिय बुद्धि गुनी।
दुहुँ बाणनि लै दोउ बाहिं हनी॥

वहँ छाडि कै देह चल्यो जबहीं।
यह ब्योम मे बात कह्यो तबहीं ॥६९॥
पीछे मघवा मोहिं शाप दयी।
गधर्व ते राक्षस देह भयी॥
फिरि कै मघवा सह युद्ध भयो।
उन क्रोध कै शीश मे बज्र हयो ॥७०॥

[दो०] गयो शीश गडि पेट मै, पर्‌यो धरणि पर आय।
कछु करुणा जिय मों भई, दीन्ही बाहु बढाय ॥७१॥
बाहु दयी द्वै कोस की, "आवै तेहि गहि खाउ।
राम रूप सीता-हरण, उधरहु गहन उपाउ" ॥७२॥
सुरसरि ते आगे चले, मिलिहैं कपि सुग्रीव।
देहै सीता की खबरि, बाढै सुख अति जीव ॥७३॥

विरहजन्य प्रलाप

[तोटक छंद]

सरिता एक केशव सोभ रई।
अवलोकि तहाँ चकवा चकई॥
उर में सिय प्रीति समाइ रही।
तिन सों रघुनायक बात कही ॥७४॥
अवलोकत हौं जबहीं जबहीं।
दुख होत तुम्है तबहीं तबहीं॥
वह बैर न चित्त कछू धरिए।
सिय देहु बताइ कृपा करिए ॥७५॥

शशि के अवलोकन दूरि किये।
जिनके मुख की छबि देखि जिये॥
कृत[1] चित्त चकोर कछूक धरौ।
सिय देहु बताय सहाय करौ॥ ७६॥

[सवैया]

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक लिये हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षण जानि तजे डरिकै॥
सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय सो करुणा[2] करुणा करिकै॥७७॥

[नाराच छंद]

हिमांशु सूर सो लगै सो बात बज्र सो बहै।
दिशा लगे कृशानु ज्यों विलेप अंग को दहै॥
बिशेषि कालराति सो कराल राति मानिए।
वियोग सीय को न काल लोकहार जानिए॥ ७८॥

राम-शबरी-मिलन

[पद्धटिका छंद]

यहि भाँति विलोके सकल ठौर।
गये शवरी पै दोउ देव-मौर॥
लियो पादोदक तेहि पद पखारि।
पुनि अर्घ्यादिक दीन्हे सुधारि॥ ७९॥

---

(१) कृत = उपकार। (२) करुणा = करना नाम का पेड़।

हर देत मंत्र जिनको विशाल ।
शुभ काशी मै पुनि मरन काल ॥
ते आये मेरे धाम आज ।
सब सफल करन जप तप समाज ॥ ८० ॥
फल भोजन को तेहि धरे आनि ।
भये यज्ञपुरुष अति प्रीति मानि ॥
तिन रामचद्र लक्ष्मण स्वरूप ।
तब धरे चित्त जग जोति-रूप ॥ ८१ ॥

[दो०] शबरी पावक पथ तब, हरखि गई हरिलोक ।
वनन विलोकत हरि गये, पपा तीर सशोक ॥ ८२

पंपासर-वर्णन

[तोटक छद]

अति सुदर सीतल सोभ बसै ।
जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै ॥
बहु पकज पंछि विराजत हैं ।
रघुनाथ विलोकत लाजत हैं ॥ ८३ ॥
सिगरी ऋतु शोभित सुभ्र जहीं ।
लहै ग्रीषम पै न प्रवेश सही ॥
नव नीरज नीर तहाँ सरसै ।
सिय के सुभ लोचन से दरसै ॥ ८४ ॥

[विजय-छंद]

सुंदर सेत सरोरुह मैं करहाटक[1] हाटक[2] की द्युति को है ?
तापर भौंर भले मन रोचन लोक-विलोचन की रुचि रोहै।
देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै।
केशव केशवराय मनो कमलासन[3] के सिर ऊपर सोहै ॥८५॥

लक्ष्मण— [सवैया]

मिलि चक्रिन[4] चंदन वात बहै अति मोहत न्यायन ही मति को।
मृगमित्र[5] विलोकत चित्त जरै लिये चंद निशाचर पद्धति को।
प्रतिकूल सुकादिक होहिं सबै जिय जानै नहीं इनकी गति को।
दुख देत तडाग तुम्हैं न बनै कमलाकर ह्वै कमलापति को ॥८६॥

(इति अरण्य कांड)

---

(१) करहाटक = कमल पुष्प के बीच की छतरी। (२) हाटक = सोना। (३) कमलासन = ब्रह्मा। (४) चक्रिन = सर्प। (५) मृग-मित्र = चंद्रमा।

किष्किंधा कांड

[दो०] ऋष्यमूक पर्वत गये, केशव श्री रघुनाथ।
देखे वानर पच विभु, माना दक्षिण हाथ ॥ १ ॥

[कुसुमविचित्रा छंद]

तब कपि राजा रघुपति देखे।
मन नर-नारायण सम लेखे ॥
द्विज वपु धरि तहँ हनुमत आये।
बहु विधि आशिष दै मन भाये ॥ २ ॥

राम-हनुमान्-संवाद

हनुमान्—सब विधि रूरे वन महँ को हौ ?
तन मन सूरे मनमथ मोहौ।
शिरसि जटा वकला वपुधारी।
हरिहर मानहुँ विपिनविहारी ॥ ३ ॥
परम वियोगी सम रस भीने।
तन मन एकै युग तन कीने ॥
तुम को हौ का लगि वन आये।
केहि कुल हौ कौने पुनि जाये ॥ ४ ॥

[चचरी छंद]

राम—पुत्र श्री दशरत्थ के वन राज सासन आइयो।
सीय सुंदरि संग ही बिछुरी सो सोध न पाइयो ॥

राम लक्ष्मण नाम संयुत सूरवंश बखानिए।
रावरे वन कौन हौ क्यहि काज क्यो पहिचानिए ॥५॥

[दोहा]

हनुमान्—या गिरि पर सुग्रीव नृप, ता सँग मंत्री चारि।
वानर लयी छँडाइ तिय, दीन्हो बालि निकारि ॥६॥

[दोधक छंद]

वा कहँ जौ अपनो करि जानौ।
मारहु बालि विनै यह मानौ॥
राज देहु दै वाकी तिया कौं।
तौ हम देहिं बताय प्रिया कौ ॥७॥

राम-सुग्रीव-मिताई

[दो०] उठे राज सुग्रीव तब, तन मन अति सुख पाइ।
सीताजू के पट-सहित, नूपुर दीन्हे आइ ॥८॥

[दंडक]

राम—पंजर की खंजरीट, नैनन को, किधौं मीन
मानस को केशोदास जलु है कि जारु है।
अंग को कि अंगराग, गेंडुआ[1] की गलसुई[2]
किधौं कोट जीव ही कौ उर कौ कि हारु है।
बंधन हमारौ कामकेलि कौ, कि ताडिबे को
ताजनो[3], विचार कौ की चमर बिचारु है।

(१) गेंडुआ = तकिया। (२) गलसुई = गाल के नीचे लगाने का छोटा कोमल तकिया। (३) ताजनो (फा० ताज़ियाना) = कोड़ा।

मान की जमनिका[1] की, कजमुख मूँदिबे को
सीताजू कौ उत्तरीय सब सुख सारु है ॥ ९ ॥

[स्वागता छंद]

वानरेंद्र तब यौं हँसि बोल्यो ।
भीति भेद जिय कौ सब खोल्यो ॥
आगि बारि परतच्छ करी जू ।
रामचंद्र हँसि बाहँ धरी जू ॥१०॥
सूर-पुत्र तब जीवन जान्यो ।
बालि-जोर बहु भाँति बखान्यो ॥
नारि छीनि जेहि भाँति लई जू ।
सो अशेष विनती विनई जू ॥११॥

सप्तताल-वेधन

एक बार शर एक हनौ जौ ।
सात ताल बलवंत गनौं तौ ॥
रामचंद्र हँसि बाण चलायो ।
ताल वेधि फिरि कै कर आयो ॥१२॥

[तारक छंद]

सुग्रीव—यह अद्भुत कर्म और पै होई ।
सुर सिद्ध प्रसिद्धन मे तुम कोई ॥
निकरी मन तैं सिगरी दुचिताई ।
तुम सौ प्रभु पाय सदा सुखदाई ॥१३॥

---

(१) जमनिका = परदा, कनात ।

[विजय छंद]

बावन कौ पद लोकन मापि ज्यों बावन के वपु माँह सिधायो।
केशव सूरसुता जल सिंधुहिं पूरिकै सूरहि कौ पद पायो॥
काम के बाण त्वचा सब वेधिकै काम पै आवत ज्यों जग गायो।
राम कौ शायक सातहु तालनि वेधिकै रामहिं के कर आयो॥१४॥

[सो०] जिनके नाम विलास, अखिल लोक वेधत पतित।
तिनको केशवदास, सात ताल वेधन कहा॥१५॥

बालि-वध

[पद्धटिका छंद]

रवि-पुत्र बालि सों होत युद्ध।
रघुनाथ भये मन माहँ क्रुद्ध॥
शर एक हन्यौ उर मित्र काम।
तब भूमि गिर्यौ कहि 'राम' 'राम'॥१६॥
कछु चेत भये तेहि बल-निधान।
रघुनाथ विलोके हाथ बान॥
शुभ चीर जटा शिर श्याम गात।
वनमाल हिये उर विप्रलात॥१७॥

बालि—तुम आदि मध्य अवसान एक।
जग मोहत हौ वपु धरि अनेक॥
तुम सदा शुद्ध सब कों समान।
केहि हेतु हत्यौ करुनानिधान?॥१८॥

राम—सुनि वासव-सुत बुधि-बल-निधान।
मैं शरणागत हित हते प्रान ॥
यह साँटो[1] लै कृष्णावतार।
तब ह्वैहौ तुम संसार पार ॥१९॥
रघुवीर रंक ते राज कीन।
युवराज बिरद अंगदहि दीन ॥
तब किष्किंधा तारा समेत।
सुग्रीव गये अपने निकेत ॥२०॥

[दो०] कियो नृपति सुग्रीव हति, बालि बली रणधीर।
गये प्रवर्षण अद्रि कों, लक्ष्मण श्री रघुवीर ॥२१॥

प्रवर्षणगिरि-वर्णन

[त्रिभंगी छंद]

देख्यौ शुभ गिरिवर सकल सोभ धर,
फूल बरन बहु फलनि फरे।
सँग सरभ ऋक्ष जन केसरि के गण,
मनहुँ धरणि सुग्रीव धरे।
सँग सिवा विराजै गज मुख गाजै,
परभृत[2] बोलै चित्त हरे।
सिर सुभ चंद्रक[3] धर परम दिगंबर,
मानौ हर अहिराज धरे ॥२२॥

(१) साँटो = बदला। (२) परभृत = कोकिल। (३) चंद्रक = तालाब; चंद्रमा।

[तोमर छंद]

शेशु सौं लसै सँग धाइ। वनमाल ज्यौं सुरराइ ॥
अहिराज सों यहि काल। बहु शीश शोभनि माल॥ २३ ॥

[स्वागता छद]

चद्र मद द्युति वासर देखौ। भूमि हीन भुवपाल विशेपौ ॥
मित्र देखि यह शोभत है यौ। राजसाज बिनु सीतहि हौं ज्यौं॥२४॥
[दो०] पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मद।
चद्र बिना ज्यौं यामिनी, ज्यौं बिन यामिनि चद ॥२५॥

वर्षा-वर्णन

[स्वागता छद]

देखि राम बरषा ऋतु आयी। रोम रोम बहुधा दुखदायी ॥
आसपास तम की छबि छायी। राति दिवस कुछु जानि न जायी ॥२६
मद मद धुनि सो घन गाजै। तूर[1] तार जनु आवझ बाजै ॥
ठौर ठौर चपला चमकै यौ। इद्रलोक तिय नाचति हैं ज्यौं ॥२७॥

[मोटनक छद]

सोहै घन श्यामल घोर घनै। मोहैं तिनमैं बकपाँति मनै ॥
शखावलि पी बहुधा जल सौं। मानो तिनकौ उगिलै बल सौं ॥२८॥

---

(१) तूर = नगाडा।

शोभा अति शक्र शरासन मै। नाना द्युति दीसति है घन मै॥
रत्नावलि सी दिवि द्वार भनो। वर्षागम बाँधिय देव मनो॥२९॥

[तारक छंद]

घन घोर घने दशहूँ दिशि छाये।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
अपराध बिना क्षिति के तन ताये।
तिन पीडन पीड़ित ह्वै उठि धाये॥ ३० ॥
अति गाजत बाजत दुंदुभि मानो।
निरघात सबै पविपात बखानो॥
धनु है यह गौर मदाइनि[1] नाहीं।
शर जाल बहै जलधार वृथा हीं॥ ३१ ॥
भट चातक दादुर मार न बोले।
चपला चमकै न फिरै खँग खोले॥
द्युतिवतन कौ विपदा बहु कीन्हीं।
धरनी कहँ चंद्रवधू[2] धरि दीन्ही॥ ३२ ॥
तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी।
उर मैं मँद चंद्रकला सम दीसी॥
वरषा न सुनै किलकै किल काली।
सब जानत है महिमा अहिमाली॥ ३३॥

---

(१) गौर मदाइनि = इंद्रधनुष। (२) चंद्रवधू = वीरबहूटी।

[घनाक्षरी]

मोहै सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर[1],
भूखन जराय[2] जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा शशी की, नैन
अमल[3] कमल दल दलित निकाई[4] है॥
केसौदास प्रबल करेनुका[5] गमनहर,
मुकुत सु हंसक सबद[6] सुखदाई है।
अंबर-बलित[7] मति मोहै नीलकंठ[8] जू की,
कालिका कि बरखा हरखि हिय आई है॥ ३८

वर्णत केसव सकल कवि, विषम गाढ़ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई, सतत मिथ्या दृष्टि॥ ३९॥

[चंद्रकला छंद]

कल-हंस, कलानिधि, खंजन, कंज, कछू दिन केसव देखि जिये।
गति, आनन, लोचन, पायन के अनुरूपक से मन मानि लिये॥

---

(१) प्रमुदित पयोधर = उनये हुए बादल; उन्नत स्तन। (२) भूखन जराय = जड़ाऊ गहने, (भू-ख-नजराय) पृथ्वी और आकाश में दिखाई देती हैं। (३) नैन अमल = स्वच्छ आँखें; (नै न अमल) नदियाँ निर्मल नहीं हैं। (४) निकाई = सुंदरता, काई-रहित होना। (५) प्रबल-करेनुका-गमनहर = मत्तगजगामिनी; (प्रबल + क + रेनुका + गमनहर) धूल और आवागमन रोकनेवाला प्रबल जल। (६) मुकुत सु हंसक सबद = हंसों के शब्दों से मुक्त, बिछुओं का स्वच्छंद शब्द। (७) अंबर-बलित = घिरा हुआ आकाश, वस्त्र पहने हुए। (८) नीलकंठ = मयूर, महादेव।

यहि काल कराल ते शोधि सबै हठिकै बरषा मिस दूरि किये।
अब धौं बिन प्रानप्रिया रहिहै कहि कौन हितू अवलबि हिये ॥३६॥

शरद-वर्णन

[दो०] बीते वर्षा काल यौं, आई शरद सुजाति।
गये अँध्यारी होति ज्यौं, चारु चाँदनी राति ॥ ३७ ॥

[मोटनक छंद]

दंतावलि कुंद समान गनौ। चंद्रानन कुंतल भौंर घनौ॥
भौंहैं धनु खंजन नैन मनौ। राजीवनि ज्यों पद पानि भनौ ॥३८॥
हारावलि नीरज[1] हीय रमैं। हैं लीन पयोधर अंबर मैं॥
पाटीर[2] जोन्हाइहि अंग धरे। हंसी गति केशव चित्त हरे॥३९॥
श्रीनारद की दरसै मति सी। लोपै तमता अपकीरति सी॥
मानौ पतिदेवन की रति कौ। सतमारग की समुझै गति कौ ॥४०॥
[दो०] लक्ष्मण दासी वृद्ध सीं, आई शरद सुजाति।
मनहुँ जगावन कौं हमहि, बीते वर्षा राति ॥ ४१ ॥

सुग्रीव पर क्रोध

[कुंडलिया]

ताते नृप सुग्रीव पै, जैए सत्वर तात।
कहियो वचन बुझाइ कै, कुशल न चाहौ गात॥
कुशल न चाहौ गात चहत हौ बालिहि देख्यो।
करहु न सीता सोध,काम बस राम न लेख्यो॥

(१) नीरज = मोती। (२) पाटीर = चंदन।

राम न लेखौ[1] चित्त लही सुख सपति जातें ।
'मित्र' कह्यो गहि बाँह कानि कीजत है तातें ॥४२॥

[दो०] लक्ष्मण किष्किधा गये, वचन कहे करि क्रोध ।
तारा तब समुझाइयो, कीन्हों बहुत प्रबोध ॥४३॥

[दोधक छ द]

बोलि लए हनुमान तबै जू ।
ल्यावहु वानर बोलि सबै जू ॥
बार लगै न कहूँ बिरमाहीं ।
एक न कोउ रहै घर माहीं ॥४४॥

[त्रिभगी छ द]

सुग्रीव सँघाती मुख दुति राती,
केसव साथहि सूर नये ।
आकास विलासी सूरप्रकासी,
तब हीं वानर आइ गये ।
दिसि दिसि अवगाहन, सीतहि चाहन,
यूथप यूथ सबै पठये ।
नल नील ऋच्छपति अ गद के सँग,
दक्षिण दिसि को बिदा भये ॥४५॥

सीताखोजहित वानर-सेना का प्रस्थान

[दो०] बुधि विक्रम व्यवसाय युत, साधु समुझि रघुनाथ ।
बल अन त हनुमत के, मुँदरी दीन्ही हाथ ॥४६॥

---

(१) न लेखौ = कुछ नहीं गिनते हो ।

[हीरक छंद]

चंड चरण छंडि धरणि मंडि गगन धावहीं।
ततछन ह्वै दच्छिन दिसि लच्छ नहीं पावहीं॥
धीर धरन वीर बरन सिंधु तट सुभावहीं।
नाम परमधाम धरम राम करम गावहीं॥४७॥

[अनुकूल छंद]

अंगद—सीय न पाई अवधि विनासी।
होहु सबै सागरतटवासी॥
जो घर जैए सकुच अनंता।
मोहि न छोड़ै जनकनिहंता॥४८॥

हनुमान—अंगद रच्छा रघुपति कीन्हौ।
सोध न सीता जल थल लीन्हौ॥
आलस छाँडौ कृत उर आनौ।
होहु कृतघ्नी जनि, सिख मानौ॥४९॥

[दंडक]

अंगद—जीरन जटायु गीध धन्य एक जिन रोकि,
रावन विरथ कीन्हौ सहि निज प्रान-हानि।
हुते हनुमंत बलवंत तहाँ पाँचजन,
दीने हुते भूषन कछूक रंनरूप जानि॥
आरत पुकारत ही 'राम' 'राम' बार बार,
लीन्हों न छुँड़ाइ तुम सीता अति भीत मानि।

गाइ द्विजराज तिय काज न पुकार लागै,
भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि ॥५०॥

[दो०] सुनि सपाति सपच्छ ह्वै, रामचरित सुख पाय।
सीता लका माँझ हैं, खगपति दयी बताय ॥५१॥

[दडक]

हरि कैसो वाहन की विधि कैसो हेम हस,
लीक सी लिखत नभ-पाहन के अक कों।
तेज को निधान राम-मुद्रिका-विमान कैधौं,
लच्छण को वाण छूट्यो रावण निशक को ॥
गिरि गजगड तै उडान्यो सुवरन अलि,
सीता पद पंकज सदा कलक रंक कों।
हवाई[1] सी छूटी केसोदास आसमान मैं,
कमान[2] कैसो गोला हनुमान चल्यो लक कों ॥५२॥

(इति किष्किधा कांड)

---

(१) हवाई = आतशबाजी का वाण। (२) कमान = तोप।

सुंदर कांड

हनुमान् लंका-गमन

[दो०] उदधि नाकपतिशत्रु[1] को, उदित जानि बलवत।
अंतरिच्छ हीं लच्छि पद, अच्छ छुयो हनुमत ॥ १ ॥
बीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि ॥ २ ॥

[तारक छद]

कछु राति गये करि दृश दशा सी।
पुर माँझ चले वनराजि विलासी ॥
जब हीं हनुमत चले तजि शंका।
मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका ॥ ३ ॥

हनुमान्-लंका-संवाद

लका—कहि मोहि उलंघि चले तुम को हौ ?
अति सूच्छम रूप धरे मन मोहौ !
पठये केहि कारण, कौन चले हौ ?
सुर हौ किधौं कोऊ सुरेश भले हौ ॥ ४ ॥
हनुमान्—हम वानर हैं रघुनाथ पठाये।
तिनकी तरुनी अवलोकन आये ॥

---

(१) नाकपतिशत्रु = मैनाक।

लका—हति मोहि महामति भीतर जैए।
हनुमान्—तरुणीहि हते कव लौं सुख पैए ॥५॥
लका—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहौ।
हठ कोटि करौ घरहीं फिरि जैहौ॥
हनुमत वली तेहि थापर मारी।
तजि देह भई तव ही वर नारी ॥६॥
लका-[चौ०] धनदपुरी हौं रावन लीन्ही।
वहु विधि पापन के रस भीनी॥
चतुरानन चित चितन कीन्हो।
वरु करुणा करि मो कहँ दीन्हो ॥७॥
जव दसकठ सिया हरि लैहै।
हरि[1] हनुमत विलोकन ऐहै॥
जव वह तोहि हतै तजि सका।
तव प्रभु होइ विभीषण लका ॥८॥
चलन लगौ जवही तव कीजौ।
मृतकशरीरहि पावक दीजौ॥
यह कहि जात भई वह नारी।
सव नगरी हनुमत निहारी ॥९॥

रावण-शयनागार

तव हरि रावण सोवत देख्यो।
मणिमय पलका की छवि लेख्यो॥

---

(१) हरि=वदर।

तहँ तरुनी बहु भाँतिन गावै।
बिच बिच आवझ बीन बजावै ॥१०॥
मृतक चिता पर मानहु सोहै।
चहुँ दिशि प्रेतवधू मन मोहैं॥
जहँ जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो।
सिय बिन है सिगरो घर सूनो ॥११॥

[भुजगप्रयात छंद]

कहूँ किन्नरी किन्नरी[1] लै बजावै।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावै॥
कहूँ यच्छिणी पच्छिणी को पढ़ावै।
नगी-कन्यका पन्नगी को नचावै ॥१२॥
पियै एक हाला गुहै एक माला।
बनी एक बाला नचै चित्रशाला॥
कहूँ कोकिला कोक की कारिका कों।
पढ़ावै सुआ लै सुकी सारिका कों ॥१३॥
फिर्‌यो देखिकै राजशाला सभा कों।
रह्यो रीझिकै बाटिका की प्रभा कों॥
फिर्‌यो ओर चौहूँ चितै शुद्ध गीता।
बिलोकी भली सिंसिपा-मूल सीता ॥१४॥

---

(१) किन्नरी = सारंगी॥

सीता-दर्शन

धरे एक वेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सौं काढ़ि डारी॥
सदा रामनामै ररै दीन वानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दु:खदानी॥१५॥
असी बुद्धि सी चित्त चिंतानि मानौ।
किधौं जीभ दंतावली मैं बखानौं॥
किधौ घेरिकै राहु नारीन लीनी।
कला चंद्र की चारु पीयूष भीनी॥१६॥
किधौं जीव की जोति मायान लीनी।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी॥
मनो संवरस्त्रीन मैं काम वामा।
हनूमान ऐसी लखी राम-रामा॥१७॥
तहाँ देव-द्वेषी दसग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दु:ख पायो॥
सबै अंग लै अंग ही मैं दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥१८॥

रावण-सीता-संवाद

रावण—सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै।
इतो सोच तौ राम काजे न कीजै॥
बसैं दंडकारण्य देखै न कोऊ।
जो देखै महा बावरो होय सोऊ॥१९॥

कृतघ्नी[1] कुदाता[2] कुकन्याहि[3] चाहै।
हितू नग्न मुडीन ही को सदा है॥
अनाथै सुन्यौ मै अनाथानुसारी।
बसै चित्त दडा जटी मुडधारी॥२०॥
तुम्है देवि दूषै हितू ताहि मानै।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानै॥
महानिर्गुणी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यौ न कीजै॥२१॥
अदेवी नृदेवीन की होहु रानी।
करैं सेव बानी मघौनी मृड़ानी॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं।
सुकेसी नचै उर्वशी मान पावै॥२२॥

[मालिनी छद]

सीता—तृण बिच दै बोली सीय गभीर बानी।
दसमुख सठ को तू? कौन की राजधानी?॥
दसरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यो न स्यौ मूल नासै॥२३॥
अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल खर सर धारा क्यौं सहै तिच्छ ताकी॥

(१) कृतघ्नी=कृतघ्न, (कर्मनाशक, मुक्तिदाता)। (२) कुदाता=कृपण, (पृथ्वी का दान कर देनेवाला)। (३) कुकन्या=बुरी कन्या शवरी इत्यादि; पृथ्वी की कन्या, सीता)।

बिड[1] कन घन घूरे भच्छि क्यों बाज जीवै ?
सिवसिर ससि श्री कों राहु कैसे सो छीवै ॥२४॥
उठि उठि सठ ह्याँ तै भागु तौ लौं अभागे ।
मम वचन बिसर्पी[2] सर्प जौ लौं न लागे ॥
विकल सकुल देखौं आसु ही नाश तेरौ ।
निठुट मृतक तोकौं रोष मारै न मेरौ ॥२५॥
[दो०] अवधि दई द्वै मास की, कह्यो राच्छसिन बोलि ।
ज्यों समुझै समुझाइयो, युक्ति-छुरी सौ छोलि ॥२६॥

मुद्रिका-प्रदान

[चामर छद]

देखि देखि कै असोक राजपुत्रिका कह्यौ ।
देहि मोहिं आगि तै जो अ ग आगि ह्वै रह्यौ ॥
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई ।
आसपास देखि कै उठाय हाथ कै लई ॥२७॥

[तोमर छद]

जब लगी सियरी हाथ । यह आगि कैसी नाथ ॥
यह कह्यौ लषि तब ताहि । मनि-जटित मुँदरी आहि ॥२८॥
जब बाँचि देख्यौ नाँउ । मन पर्‌यो सभ्रम भाउ ॥
आबाल ते रघुनाथ । यह धरी अपने हाथ ॥२९॥
बिछुरी सो कौन उपाउँ । केहि आनियो यहि ठाउँ ॥
सुधि लहौं कौन उपाउँ । अब काहि बूझन जाउँ ॥३०॥

(१) बिड = विष्ठा । (२) बिसर्पी = फैलनेवाले ।

चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियौ आकास॥
तहँ शाख बैठो नीठि[1]। तब पर्‌यो वानर डीठि॥३१॥

सीता-हनुमान-संवाद

तब कह्यौ, "को तू आहि। सुर असुर मोतन चाहि॥
कै यच्छ, पच्छ बिरूप। दसकंठ वानर रूप॥३२॥
कहि आपनौ तू भेद। न तु चित्त उपजत खेद॥
कहि वेगि वानर, पाप। न तु तोहिं दैहौं शाप"॥
डरि वृच्छ शाखा भूमि। कपि उतरि आयौ भूमि॥३३॥

[पद्धटिका छंद]

कर जोरि कह्यौ, 'हौं पवन-पूत।
जिय जननि जानु रघुनाथ-दूत'॥
'रघुनाथ कौन?' 'दशरत्थ-नंद।'
'दशरत्थ कौन?' 'अज-तनय चंद'॥३४॥
'केहि कारण पठये यहि निकेत?'
'निज देन लेन सदेश हेत॥'
'गुन रूप सील सोभा सुभाउ।
कछु रघुपति के लच्छन बताउ'॥३५॥
'अति यदपि सुमित्रा-नंद भक्त।
अति सेवक है अति सूर सक्त॥
अरु यदपि अनुज तीन्यौ समान।
पै तदपि भरत भावत निदान॥३६॥

(१) नीठि = बड़ी मुश्किल से।

ज्यौं नारायण उर श्री बसति ।
त्यौं रघुपति उर कछु द्युति लसति ॥
जग जितने हैं सब भूमि भूप ।
सुर असुर न पूजै राम रूप' ॥ ३७ ॥

[निशिपालिका छंद]

सीता—मोहिं परतीति यहि भाँति नहिं आवई ।
प्रीति कहि धौं सु नर वानरनि क्यौं भई ॥
बात सब वर्णि परतीति हरि त्यौं दई ।
आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥ ३८ ॥

[दो०] आँसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाइ ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, बरनति है बहु भाइ ॥ ३९ ॥

मुद्रिका-वर्णन

[पद्धटिका छंद]

यह सूरकिरण तम दुःखहारि ।
ससिकला किधौं उर सीतकारि ॥
कल कीरति सी सुभ सहित नाम ।
कै राज्यश्री यह तजी राम ॥ ४० ॥
कै नारायन उर सम लसति ।
सुभ अंकन ऊपर श्री बसति ॥
वर-विद्या सी आन ददानि ।
युत अष्टापद[1] मनु शिवा मानि ॥ ४१ ॥

---

(१) अष्टापद = शार्दूल, सोना ।

जनु माया अच्छर सहित देखि ।
कै पत्री निश्चयदानि लेखि ॥
प्रिय प्रतीहारनी सी निहारि ।
श्री रामोजय उच्चारकारि ॥ ४२ ॥
पिय पठई मानौ सखि सुजान ।
जग भूषण कौ भूषण निधान ॥
निजु[1] आई हमकौं सीख देन ।
यह किधौं हमारौ मरम लेन ॥ ४३ ॥

[दो०] सुखदा सिखदा अर्थदा, यसदा रसदातारि ।
रामचंद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि ॥ ४४ ॥
बहुबरना सहज प्रिया, तम-गुनहरा प्रमान ।
जग मारग-दरसावनी, सूरज-किरन समान ॥ ४५ ॥
श्री पुर मै, वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति ।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करिहै परतीति ॥ ४६ ॥

[पद्धटिका छंद]

कहि कुसल मुद्रिके ! रामगात ।
पुनि लक्ष्मण सहित समान तात ॥
यह उत्तर देति न बुद्धिवत ।
केहि कारण धौ हनुमत सत ॥ ४७ ॥

हनुमान्-[दो०] तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होति यहि नाम ॥
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम ॥४८॥

---

(१) निजु = निश्चय ।

राम-विरह-वर्णन

[दडक]

दीरघ दरीन बसै केसौदास केसरी ज्यौं,
केसरी कौं देखि वन करी ज्यौं कँपत हैं।
बासर की सपति उलूक ज्यौं न चितवत,
चकवा ज्यौं चद चितै चौगुनो चँपत है ॥
केका सुनि व्याल ज्यौं, बिलात जात घनस्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यौं तपत हैं।
भौंर ज्यौं भँवत वन, योगी ज्यौं जगत रैनि,
साकत ज्यौं राम नाम तेरोई जपत हैं॥ ४९ ॥

[दो०] दुख देखे सुख होहिगो सुक्ख न दु:ख विहीन।
जैसे तपसी तप तपे होत परमपद लीन ॥ ५० ॥
बरषा वैभव देखिकै देखी सरद सकाम।
जैसे रन मैं काल भट भेटि, भेटियत बाम ॥ ५
दु:ख देखिकै देखिहौ तव सुख आनँद-कद।
तपन ताप तपि द्यौस निसि जैसे सीतल चद ॥ ५२ ॥
अपनी दसा कहा कहौं दीप दसा सी देह।
जरत जाति बासर निसा केसव सहित सनेह ॥ ५३ ॥
सुगति सुकेसि सुनैनि सुनि सुमुखि सुदति सुस्रोनि।
दरसावैगो बेगिही तुमको सरसिजयोनि ॥ ५४ ॥

[हरिगीत छद]

कछु जननि दे परतीति जासो रामचंद्रहि आवई।
सुभ सीस की मनि दई, यह कहि, 'सुयस तव जग गावई॥
सब काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ।
सुत आजु ते रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ'॥ ५५ ॥
कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो।
पुनि जबुमाली मत्रिसुत अरु पच मत्रि सँहारियो॥
रन मारि अच्छकुमार बहु बिधि इद्रजित सों युद्ध कै।
अति ब्रह्मसस्त्र प्रमान मानि सो वस्य भो मन सुद्ध कै॥ ५६ ॥

हनुमान्-रावण-संवाद

[विजय छद]

'रे कपि कौन तु अच्छ को घातक ?' 'दूत बली रघुनदन जू को।'
'को रघुनंदन रे ?' 'त्रिसिरा-खरदूषन-दूषन भूषन भू को॥'
'सागर कैसे तर्‌यो?' 'जैसे गोपद', 'काज कहा?' 'सियचोरहि देखौं।'
'कैसे बँधायो ?' 'जो सुदरि तेरी छुई दृग सोवत, पातक लेखौं'॥५७॥

[चामर छद]

रावण—कोरि कोरि यातनानि फोरि फारि मारिए।
काटि काटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारिए॥
खाल खैचि खैचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहु रे।
पौरि टाँगि रुड मुड लै उडाइ जाहु रे॥ ५८॥
विभीषण—दूत मारिए न राजराज, छोडि दीजई।
मंत्रि मित्र पूँछि कै सो और दड कीजई॥

एक एक मारि क्यौं बडो कलङ्क लीजई ।
बुद सोखि गो कहा महा समुद्र छीजई ॥५९॥
तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि बाससी ।
लै अपार रार[1] ऊन दून सून सैा कसी ॥
पूछ पौनपूत की सँवारि बारि दी जहीं ।
अंग को घटाइ कै उडाइ जात भो तहीं ॥६०॥

[चचरी छंद]

धाम धामनि आगि की बहु ज्वाल-माल बिराजहीं ।
पौन के झकझोर तै झँझरी झरोखन भ्राजहीं ॥
बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं ।
छुद्र ज्यो बिपदाहि आवत छोडि जात न लाजहीं ॥६१॥

लंका-दाह

[भुजगप्रयात छंद]

जटी अग्निज्वाला अटा सेत है यौं ।
सरत्काल के मेघ सध्या समै ज्यौं ॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजै ।
मनो स्वर्ण की किंकिणी नाग साजै ॥६२॥
कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढे ।
मनौ ईस-रोषाग्नि मै काम डाढे ॥
कहूँ कामिनी ज्वालमालानि भोरै ।
तजै लाल सारी अलंकार तोरै ॥६३॥

---

(१) रार = राल, धूप ।

कहूँ भौन राते रचे धूम-छाहीं।
ससी सूर मानौं लसै मेघ माहीं॥
जरै सस्त्रसाला मिली गंधमाला।
मलै अद्रि मानौ लगी दाव-ज्वाला॥६४॥
चली भागि चौहूँ दिसा राजरानी।
मिलीं ज्वाल-माला फिरैं दुःखदानी॥
मनो ईस-बानावली लाल लोलै।
सबै दैत्यजायान के संग डोलै॥६५॥

[सवैया]

लंक लगाइ दई हनुमंत विमान बचे अति उच्चरुखी ह्वै।
पावक मैं उचटै बहुधा मनि, रानी रटै 'पानी' 'पानी' दुखी ह्वै॥
कंचन को पघिल्यो पुर पूर, पयोनिधि मै पसरो सो सुखी ह्वै।
गंग हजारमुखी गुनि, केसौ, गिरा मिली मानौ अपार मुखी ह्वै॥६६॥

[दो०] हनुमंत लाई लंक सब, बच्यो विभीषन धाम।
ज्यौं अरुनोदय बेर मैं, पंकज पूरब याम॥६७॥

[संयुता छंद]

हनुमंत लंक लगाइ कै। पुनि पूछ सिंधु बुझाइ कै।
शुभ देख सीतहि पाँ परे। मनि पाय आनँद जी भरे॥६८॥
रघुनाथ पै जब ही गये। उठि अंक लावन को भये।
प्रभु मैं कहा करनी करी। सिर पाय की धरनी धरी॥६९॥

[दो०] चिंतामनि सी मनि दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीताजू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनंत॥७०॥

सीता-संदेश

[घनाक्षरी]

भौंरनी ज्यौं भ्रमति रहति बनबीथिकानि,
हंसिनी ज्यौं मृदुल मृनालिका चहति है।
हरिनी ज्यौं हेरति न केसरी[1] के काननहिं,
केका सुनि ब्याली ज्यौं बिलानहीं चहति है॥
'पीउ' 'पीउ' रटत रहति चित चातकी ज्यौं,
चद चितै चकई ज्यौं चुप ह्वै रहति है।
सुनहु नृपति राम बिरह तिहारे ऐसी,
सूरतिन[2] सीताजू की मूरति गहति है॥७१॥

[दो०] "श्रीनृसिंह प्रह्लाद की, वेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आसु ही झूँठी ह्वैहै नाथ" ॥७२॥

[दडक]

राम—साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दु:ख हरि,
और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ।
बानर नहीं हौ तुम मेरे बान रोप सम,
बलीमुख सूर बली मुख निजु गाये हौ॥
साखामृग नाहीं, बुद्धि-बलन के साखामृग,
कैधौं वेद साखामृग, केसव को भाये हौ।
साधु हनुमत बलवत यसवत तुम,
गये एक काज को अनेक करि आये हौ॥७३॥

---

(१) केसरी = सिंह केशर। (२) सूरतिन = सूरतों, दशाओं।

[तोमर छंद]

हनुमान्—गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहिं ल्याई वार ॥
कह कर्‌यो मै बल एक। अतिमृतक जारी लंक ॥७४॥

राम पयान

तिथि विजयदसमी पाइ। उठि चले श्री रघुराइ ॥
हरि यूथ यूथप संग। बिन पच्छ के ते पतंग ॥७५॥

[दंडक]

सुग्रीव—कहै केसौदास, तुम सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरी जबहि सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसिहिं[1] आसपास,
दिसि दिसि बरषा ज्यौ बलनि बलति है॥
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गन,
गजराज मृगराज राजनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पथ आइ जात,
पुरइनि के से पात पुहुमी हलति है ॥७६॥

लक्ष्मण—भार के उतारिबे को अवतरे रामचंद्र,
किधौं केसौदास भूरि भरन प्रबल दल।
टूटत है तरुवर गिरे गन गिरिवर,
सूखे सब सरवर सरिता सकल जल ॥
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।

(१) रोदसिहिं = भूमि और आकाश।

लचकि लचकि जात सेस के असेस फन,

भागि-गई भोगवती[1], अतल, वितल, तल ॥७७॥

[दो०] बल-सागर लछिमन सहित, कपि-सागर रनधीर ।

यस-सागर रघुनाथ जू, मेले सागर तीर ॥७८॥

समुद्र वर्णन

[विजय छंद]

भूति विभूति पियूषहु की विष,

ईस सरीर कि पाय बियो है ।

है किधौं केसव कस्यप को घर,

देव अदेवन के मन मोहै ॥

सत हियो कि बसै हरि सतत,

सोभ अनत कहै, कवि को है ।

चदन नीर तरग तरगित,

नागर कोउ कि सागर सोहै ॥७९॥

[गीतिका छद]

जलजाल काल कराल माल तिमिंगिलादिक-सों बसै ।

उर लोभ छोभ विमोह कोह सकाम ज्यों खल कों लसै ॥

बहु सपदा युत जानिए अति पातकी सम लेखिए ।

कोउ माँगनो[2] अरु पाहुनो[3] नहिं नीर पीवत देखिए ॥८०॥

(इति सुदर काड)

---

(१) भोगवती = पातालपुरी । (२) माँगनो = मगन, भिक्षुक । (३) पाहुनो = मेहमान, अतिथि ।

लंका कांड

रावण प्रति मंदोदरी का उपदेश

[विजय छंद]

मंदोदरी—राम की वाम जो आनी चोराइ,
सो लंक मै मीचु की बेलि बई जू।
क्यौं रन जीतहुगे तिनसौं, जिन
की धनु रेख न नाँघि गई जू॥
बीस बिसे बलवंत हुते जो
हुती दृग केसव रूपरई जू।
तोरि सरासन संकर को पिय
सीय स्वयंवर क्यौं न लई जू॥१॥
बालि बली न बच्यो पर खोरहि
क्यौं बचिहौ तुम आपनि खोरहिं।
जा लगि छीर समुद्र मथ्यो कहि
कैसे न बाँधिहैं वारिधि थोरहिं॥
श्री रघुनाथ गनौ असमर्थ न,
देखि बिना रथ हाथिन घोरहिं।
तोर्‌यो सरासन संकर को जेहि
सोऽब कहा तुव लंक न तोरहि॥२॥

विभीषण शरणागमन

[सवैया]

दीनदयालु कहावत केसव, हौं अति दीन दशा गह्यो गाढ़ो।
रावन के अघ-ओघ-समुद्र मैं बूड़त हौं कर ही गहि काढ़ो॥
ज्यौं गज की प्रहलाद की कीरति त्यौंहीं विभीषण को यस बाढ़ो।
आरत बंधु पुकार सुनौ किन, आरत हौं तौ पुकारत ठाढ़ो॥३॥
केसव आपु सदा सह्यो दुःख पै दासन देखि सकौ न दुखारे।
जाकौं भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्यौंहीं तहाँ तिहि भाँति पधारे॥
मेरिय बार अबार कहा, कहूँ नाहि तू काहु के दोष विचारे।
बूड़त हौं महा-मोह समुद्र मैं, राखत काहे न राखनहारे ? ॥४॥

[हरिलीला छंद]

श्री रामचंद्र अति आरतवंत जानि।
लीन्हो बोलाय शरणागत सुःखदानि॥
लंकेश आउ चिरजीवहि लंक धाम।
राजा कहाउ जौं लगि जग राम नाम॥ ५॥

सेतुबंध

[दो०] जहँ तहँ बानर सिंधु मैं, गिरिगन डारत आनि।
शब्द रह्यो भरिपूरि महि रावन कौं दुखदानि॥ ६॥

[तोटक छंद]

उछलै जल उच्च अकास चढ़ै।
जल जोर दिसा विदिसान मढ़ै॥

जनु सिंधु अकासनदी अरि कै।
बहु भाँति मनावत पाँ परि कै॥ ७॥
बहु ब्योम बिमान तै भीजि गये।
जल जोर भये अँगरागमये॥
सुर सागर मानहु युद्ध जये।
सिगरे पट भूषन लूटि लये॥ ८॥
अति उच्छलि छिछि त्रिकूट छयो।
पुर रावण के जल जोर भयो॥
तब लंक हनूमत लाइ[1] दयी।
नल मानहु आइ बुझाइ लयी॥ ९॥
लगि सेतु जहाँ तहँ सोभ गहे।
सरितानि के फेरि[2] प्रवाह बहे॥
पति देवनदी रति देखि भली।
पितु के घर को जनु रूसि चली॥१०॥
सब सागर नागर सेतु रची।
बरनै बहुधा युत सक्र सची॥
तिलकावलि सी शुभ सीस लसै।
मनिमाल किधौं उर मैं विलसै॥११॥

[तारक छंद]

उर ते सिवमूरति श्रीपति लीन्हीं।
सुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्हीं॥

---

(१) लाइ = आग्न। (२) फेरि = उलटे।

इनके दरसै परसै पग जोई।
भव सागर के तरि पार सो होई ॥ १२ ॥
[दो०] सेतु-मूल सिव सोभिजै, केसव परम प्रकास।
सागर जगत जहाज को, करिया[1] केसवदास ॥ १३ ॥

रामचमू-वर्णन

[दंडक]

कुंतल ललित नील भ्रुकुटी धनुष नैन
कुमुद कटाच्छ बाण[2] सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार[3] अंगदादि[4] भूपन रु,
मध्य देस केसरी[5] सुगजगति भाई है॥
विग्रहानुकूल[6] सब लच्छलच्छ ऋच्छबल,
ऋच्छराजमुखी[7] मुख केसौदास गाई है।
रामचंद्र जू की चमू राज्यश्री विभीषण की,
रावन की मीचु दरकूच चलि आई है ॥ १४ ॥

---

(१) करिया = कर्णधार। (२) ये सब राम की सेना के वानर-यूथपों के नाम हैं और श्लेष से अन्य दो पक्षों में भी इनके अर्थ लग जाते हैं, जो स्पष्ट ही है। (३) तार = एक वानर-यूथप का नाम, मोती। (४) अंगद = वानर-विशेष, भुजबंध। (५) मध्य देस केसरी = केसरी नामक यूथप सेना के मध्य में है, (श्री और मृत्यु की) कमर सिंह के समान है। (६) विग्रहानुकूल = अनुकूल (सुडौल) अंग अथवा युद्ध के इच्छुक, युद्ध में भी अनुकूल (श्री), विरुद्ध ग्रहों के अनुकूल (मृत्यु)। (७) ऋच्छराजमुखी = वह सेना जिसका मुखिया जामवंत है, चंद्रमुखी, भयानक।

[चचला छंद]

ताम्रकोट लोहकोट स्वर्णकोट आसपास।
देव की पुरी घिरी कि पर्वतारि के विलास॥
बीच बीच हैं कपीश बीच बीच ऋच्छ-जाल।
लक-कन्यका गरे कि पीत नील कठमाल॥ १५॥

रावण-अंगद-संवाद

[दो०] अंगद कूदि गये जहाँ, आसनगत लंकेस।
मनु मधुकर करहाट[1] पर, शोभित श्यामल वेस॥ १६॥

[नाराच छद]

प्रतीहार–पढौ विरचि! मौन वेद, जीव! सोर छडि रे।
कुबेर! बेर कै कही, न यच्छ भीर मडि रे॥
दिनेस! जाइ दूरि बैठु नारदादि सगहीं।
न बोलु चंद! मदबुद्धि इंद्र की सभा नहीं॥ १७॥

[चित्रपदा छद]

अगद यौं सुनि बानी। चित्त महारिस आनी।
ठेलि कै लोग अनैसे। जाइ सभा महँ बैसे[2]॥ १८॥

रावण–'कौन हो, पठये सो कौने, ह्याँ तुम्हैं कह काम है'?
अंगद–'जाति वानर, लकनायक-दूत, अगद नाम है'॥
'कौन है वह बाँधि कै हम देह पूछि सबै दही'?
'लक जारि सहारि अच्छ गयो सो बात वृथा कही'॥१९॥

---

(१) करहाट=कमल की छतरी। (२) बैसे=बैठे।

'कौन के सुत ?' 'बालि के' 'वह कौन बालि' न 'जानिए ?–
काँख चापि तुम्हे जो सागर सात न्हात बखानिए ॥'
'है कहाँ वह वीर ?' अंगद 'देवलोक बताइयो'।
'क्यो गयो ?' 'रघुनाथ-बान-बिमान बैठि सिधाइयो' ॥२०॥
'लकनायक को ?' 'विभीषण, देव-दूषण को दहै ?'
'मोहि जीवत होहिं क्यों ?' 'जग तोहि जीवत को कहै ?'
'मोहिं को जग मारिहै ?' दुर्बुद्धि तेरिय जानिए।'
'कौन बात पठाइयो कहि वीर वेगि बखानिए' ॥२१॥

अंगद— [सवैया]

श्री रघुनाथ कौ वानर केसव आयौ हो एकु, न काहू हयौ जू।
सागर को मद झारि, चिकारि त्रिकूट के देह बिहार छयौ जू॥
सीय निहारि सँहारि कै राच्छस सोक असोक बनीहि दयौ जू।
अच्छकुमारहिं मारिकै, लकहिं जारि कै, नीकेहि जात भयौ जू॥२२॥

[गगोदक छंद]

राम राजान के राज आये इहाँ
धाम तेरे महाभाग जागे अबै।
देवि मदोदरी कुभकर्णादि दै
मित्र मत्री जिते पूँछि देखौ सबै॥
राखिजै जाति को, भाँति[1] को वंश को
साधिजै लोक मैं लोक पर्लोक को।

---

(१) भाँति = आबरू।

आनि कै पाँ परौ देस लै, कोस लै
आसुहीं ईस-सीता चलैं ओक कों ॥२३।

रावण—लोक लोकेस स्यौं सोचि ब्रह्मा रचे
आपनी आपनी सींव सों सो रहै।
चारि बाहैं धरे विष्णु रच्छा करै,
बात साँची यहै वेदवाणी कहै॥
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेस स्यौं-
विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरै।
ताहि हौं छाँडि कै पायँ काके परौं
आजु संसार तौ पायँ मेरे परै॥२४॥

[मदिरा छंद]

'राम कौ काम कहा ?' 'रिपु जीतहिं'
'कौन कबै रिपु जीत्यो कहाँ ?'
'बालि बली', 'छल सो', 'भृगुनंदन
गर्व हर्यो', 'द्विज दीन महा॥'
'दीन सो क्यौं ? छिति छत्र हत्यो
बिन प्राणनि हैहयराज कियो।'
'हैहय कौन ?' 'वहै, बिसर्यो ? जिन
खेलत ही तुम्हें बाँधि लियो' ॥२५॥

अंगद— [विजय छंद]

सिंधु तर्यो उनको बनरा, तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बाँध्योइ बाँधत सो न बँध्यो उन वारिधि बाँधि कै बाट करी॥

अजहूँ रघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलनि तूलनि पूँछ जरी[1] न जरी, जरी लंक जराइ जरी ॥२६॥

रावण—

नील सुखेन हनू उनके, नल और सबै कपि-पुंज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पदु लै पितु जालगि मारे॥
तोसे सपूतहि जाइ कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरौ सबै दल, आजुहि क्यों न हनै बपमारे ॥२७॥

[दो०] जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास।
तासों जीवत ही मर्‌यो, लोग कहैं तजि त्रास ॥२८॥

अंगद—इनकौ बिलगु न मानिए, सुनि रावन पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु, ज्यौं असाधु त्यौं साधु ॥२९॥

रावण— [द्रुतविलंबित छंद]

उरसि अंगद लाज कछू गहौ। जनकघातक-बात वृथा कहौ॥
सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौ। सकल वानरराज तुम्हैं करौ ॥३०॥

[निशिपालिका छंद]

अंगद—सत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूत-विधि नूत[2] कबहूँ न उर आनहीं॥
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू।
राखि भुज सीस, तब और कहँ राखहू ॥३१॥

---

(१) जरी = जड़ी हुई, युक्त। (२) नूत = नूतन, नवीन।

[भुजगप्रयात छंद]

रावण—महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै।
प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै॥
क्षपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको।
करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको॥३२॥
सका[1] मेघमाला, सिखी[2] पाककारी।
करै कोतवाली महादण्डधारी॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके॥३३॥

[विजय छंद]

अंगद—पेट चढ़्यो, पलना पलिका चढ़ि
पालकि हू चढ़ि मोह मढ्यो रे।
चौक चढ़्यो, चित्रसारी चढ्यो,
गजबाजि चढ्यो, गढ़ गर्व चढ़्यो रे॥
व्योम विमान चढ्यो ई रह्यो
कहि केसव सो कबहूँ न पढ़्यो रे।
चेतत नाहीं रह्यो चढ़ि चित्त सों,
चाहत मूढ चिताहू चढ़्यो रे॥३४॥

[भुजगप्रयात छंद]

रावण—निकार्‌यो जो भैया, लियो राज जाको।
दियो काढिकै जू कहा त्रास ताको॥

---

(१) सका = सक्का, पानी भरनेवाला। (२) सिखी = अग्नि।

लिये बानराली कहाँ वात तोसों।
मो कैसे लरै राम सग्राम मोसों ॥३५॥

अ गद— [विजय छ द]

हाथी न, साथी न, घोरे न, चेरे न, गाउँ न, ठाउँ को ठाउँ विलैहै।
तात न मात, न पुत्र, न मित्र, न वित्त, न तीय कहीं सँग रैहै॥
केसव काम को राम विसारत और निकाम न कामहिं ऐहै।
चेति रे चेति अजौं चित अतर, अतकलोक अकेलोई जैहै ॥३६॥

[भुजगप्रयात छ द]

रावण—डरै गाय विप्रै, अनाथै जो भाजै।
परद्रव्य छाँडै परस्त्रीहिं लाजै॥
परद्रोह जासों न होवै रतीको।
सु कैसे लरै वेष कीन्हे यती को ॥३७॥

[दो०] गेंद करेउँ मैं खेल को हरगिरि केसौदास।
शीश चढाये आपने, कमल समान सहास ॥३८॥

[दडक]

अ गद—जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर,
ऐसे कोटि कपिन के वालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाघ[1],
मगर[2] के खेले कहा भट पद पावहीं॥
जीत्यो जो सुरेस रन,साप ऋषि-नारि ही को,
समुझहु हम द्विज नाते समुझावहीं।

---

(१) घाघ = ऐंद्रजालिक। (२) मगर = जादू।

गहौ राम-पायँ, सुख पाइ करै तपी तप,
सीताजू कों देहु, देव दुदुभी बजावहीं ॥३९॥

[वशस्थ छंद]

रावण—तपी जपी विप्रनि छिप्र ही हरौं ।
अदेव-द्वेषी सब देव संहरौं ॥
सिया न दैहौं, यह नेम जी धरौं ।
अमानुषी भूमि अवानरी करौं ॥४०॥

अंगद— [विजय छंद]

पाहन तैं पतिनी करि पावन टूक कियो हर को धनु को रे
छत्र-विहीन करी छन मैं छिति गर्व हर्‌यो तिनके बल को रे
पर्वत-पुंज पुरैनि के पात समान तरे, अजहूँ धरको रे
होइँ नरायन हूँ पै न ये गुन, कौन इहाँ नर वानर को रे ? ॥४१

[चचरी छंद]

रावण—देहिं अंगद राज तोकहँ, मारि वानरराज कों ।
बाँधि देहि विभीषनौ अरु फोरि सेतु-समाज कों ॥
पूँछ जारहि अच्छरिपु की, पाइँ लागहिं रुद्र के ।
सीय कों तब देहुँ रामहिं, पार जाइँ समुद्र के ॥४२॥

अंगद—लंक लाइ गयौ बली हनुमत, सतन गाइयो ।
सिंधु बाँधत सोधि कै नल छीर छीट बहाइयो ॥
ताहि तोहि समेत अंध, उखारि हौं उलटी करौं ।
आजु राज कहाँ विभीषण बैठिहैं, तेहितै डरौं ॥४३॥

[दो०] अंगद रावन को मुकुट, लेकरि उड्यो सुजान।
मनौ चल्यो यमलोक कों, दससिर को प्रस्थान ॥४४॥
अंगद लै वा मुकुट कों, परे राम के पाइ।
राम विभीषन के सिरसि, भूषित कियो बनाइ ॥४५॥

लंकावरोध

[पद्धटिका छंद]

दिशि दच्छिन अंगद, पूर्व नील।
पुनि हनूमत पश्चिम सुशील ॥
दिशि उत्तर लक्ष्मण सहित राम।
सुग्रीव मध्य कीन्हे विराम ॥४६॥
सँग यूथप यूथप बल विलास।
पुर फिरत विभीषन आस पास ॥
निसि-बासर सब को लेत सोधु।
यहि भाँति भयौ लंका-निरोधु ॥४७॥
तब रावन सुनि लंका-निरोध।
उपज्यो तन मन अति परम क्रोध ॥
राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि।
दच्छिनहिं महोदर गयो दौरि ॥४८॥
भयो इंद्रजीत पश्चिम दुवार।
है उत्तर रावन बल उदार ॥
कियौ विरूपाच्छ थित मध्यदेस।
करै नारांतक चहुँधा प्रवेस ॥४९॥

[प्रमिताक्षरा छंद]

अति द्वार द्वार महँ युद्ध भये । बहु ऋच्छ कँगूरन लागि गये ॥
तब स्वर्न-लंक महँ सोभ भयी । जनु अग्निज्वाल महँ धूममयी॥५०॥

मेघनाद-युद्ध

[दो०] मरकत मनि के सोभिजै, सबै कँगूरा चारु ।
आइ गयौ जनु घात को, पातक कौ परिवारु ॥५१॥

[कुसुमविचित्रा छंद]

तब निकस्यो रावणसुत सूरो । जेहि रन जीत्यो हरि[1] बलपूरो ॥
तपबल माया-तम उपजायो । कपिदल के मन संभ्रम छायो ॥५२॥

[दोधक छंद]

काहु न देखि परै वह योधा ।
यद्यपि है सिगरे बुधि बोधा ॥
सायक सौं अहिनायक साध्यो ।
सोदर स्यौं रघुनायक बाँध्यो ॥५३॥
रामहि बाँधि गयो जब लंका ।
रावन की सिगरी गयी संका ॥
देखि बँधे तब सोदर दोऊ ।
यूथप यूथ त्रसे सब कोऊ ॥५४॥

[स्वागता छंद]

इंद्रजीत तेहि लै उर लायो । आजु काज सब मो मन भायो ॥
कै विमान अधिरूढ़ि ति धाये । जानकीहि रघुनाथ दिखाये ॥५५॥

(१) हरि = इंद्र ।

[दो०] कालसर्प के कवल तै, छोरत जिनकौ नाम।
बँधे ते ब्राह्मण-वचन बस, माया-सर्पहि राम ॥५६॥

[स्वागता छंद]

पन्नगारि तबहीं तहँ आये। व्याल-जाल सब मारि भगाये।
लंक माँझ तबहीं गइ सीता। सुभ्र देह अवलोकि सुगीता ॥५७॥

रावण प्रति महोदर का उपदेश

महोदर—कहै जो कोऊ हितवत बानी।
कहौ सो तासौ अति दुःखदानी॥
गुनौ न दावै बहुधा कुदावै।
सुधी तबै साधत मौन भावै॥५८॥
कहौ सुकाचार्य्य सु हौं कहौं जू।
सदा तुम्हारो हित सग्रहौं जू॥
नृपाल भू मैं विधि चारि जानौ।
सुनौ महाराज सबै बखानौं॥५९॥

[भुजगप्रयात छंद]

यहै लोक एकै सदा साधि जानै।
बली वेनु ज्यों आपुही ईस मानै॥
करैं साधना एक परलोकही को।
हरिश्चद्र जैसे गये दै मही को॥६०॥
दुहूँ लोक कों एक साधै सयाने।
विदेहीन ज्यौं वेद बानी बखानै॥

नठै[1] लोक दोऊ हठी एक ऐसे।
त्रिशंकै हँसै ज्यौं भलेऊ अनैसे ॥६१॥

[दो०] चहूँ राज कों मै कहूँ, तुमसो राजचरित्र।
रुचै सो कीजै चित्त मै, चितहु मित्र अमित्र ॥६२॥
चारि भाँति मन्त्री कहे, चारि भाँति के मन्त्र।
मोहिं सुनायैा सुक्रजू, सोधि सोधि सब तन्त्र ॥६३॥

[छप्पै]

एक राज के काज हतै निज कारज काजे।
जैसे सुरथ निकारि सबै मंत्री सुख साजे॥
एक राज के काज आपने काज बिगारत।
जैसे लोचन हानि सही कवि बलिहि निवारत॥
एक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथि दूत ज्यैा।
एक अपनो अरु प्रभु कौ बुरो करत रावरो पूत ज्यौं ॥६४॥

[दो०] मंत्र जो चारि प्रकार के, मन्त्रिन के जे प्रमान।
बिष से, दाड़िमबीज से, गुड़ से नींब समान ॥६५॥

[चद्रवर्त्म छद]

राजनीति मत तत्व समुझिए।
देस काल गुनि युद्ध अरुझिए॥
मन्त्रि मित्र अरि को गुन गहिए।
लोक लोक अपलोक न बहिए ॥६६॥

---

(१) नठैं = नष्ट करैं।

रावण—चारि भाँति नृपता तुम कहियो।
चारि मन्त्रि मत मैं मन गहियो॥
राम मारि सुर एक न बचिहैं।
इन्द्रलोक सो वासहिं रचिहैं॥ ६७॥

[प्रमिताक्षरा छंद]

उठि कै प्रहस्त सजि सैन चले।
बहु भाँति जाइ कपि-पुंज दले॥
तब दौरि नील उठि मुष्टि हन्यो।
असुहीन गिर्‌यो भुव मुंड सन्यो॥ ६८॥

[वंशस्थ छंद]

महाबली जूझत ही प्रहस्त को।
चढ़्यो तहीं रावण मींडि हस्त को॥
अनेक भेरी बहु दुंदुभी बजै।
गयंद क्रोधांध जहाँ तहाँ गजैं॥ ६९॥

[सवैया]

देखि विभीषन को रन, रावण सक्ति गही कर रोस रई है।
छूटत ही हनुमंत सों बीचहिं पूछ लपेटि कै डारि दई है॥
दूसरी ब्रह्म की सक्ति अमोघ चलावतही 'हाइ' 'हाइ' भई है।
राख्यो भले सरनागत लक्ष्मन फूलि कै फूल सी ओढि लई है॥७०॥

[दोधक छंद]

यद्यपि है अति निर्गुनताई। मानुप देह धरे रघुराई॥
लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन ते न रह्यो जल रोक्यो॥७१॥

राम-विलाप

लोचन बाहु तुहीं धनु मेरौ। तू बल विक्रम, वारक हेरौं॥
तो बिन हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं, कछु झूठ न भाखौं॥७२॥
मोहिं रही इतनी मन संका। देन न पायी विभीषण लंका॥
बोलि उठौ प्रभु को प्रन पारो। नातरु होत है मो मुख कारो॥७३॥
मैं बिनऊँ रघुनाथ करौ अब। देव! तजौ परिवेदन को सब॥
औषधि लै निसि मैं फिर आवहिं। केसव सो सब साथ जियावहिं॥७४
सोदर सूर कौ देखतही मुख। रावन के सिगरे पुरवै सुख॥
बोल सुने हनुमंत कर्‌यो पनु। कूदि गयो जहँ औषधि को बनु॥७५॥

[षट्पद]

राम—करि आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गधर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इंद्र अब।
विद्याधरनि अविद्य करौं बिन सिद्ध सिद्धि सब॥
निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाइ जल।
सुनि सूरज सूरज उदत हीं करौं असुर ससार बल॥ ७६॥

हनुमंत-पैज

[भुजगप्रयात छंद]

हन्यो विघ्नकारी बली बीर बामैं।
गयो शीघ्रगामी गये एक यामैं।
चल्यो लै सबै पर्वतै कै प्रणामैं।
न जान्यौ विशल्यौषधी कौन तामै॥ ७७॥

द्रोणगिरि-आनयन

लसैं ओषधी चारु भो व्योमचारी।
कहैं देखि यों देव देवाधिकारी॥
पुरी भौम की सी लिये शीश राजै।
महामंगलार्थी हनूमंत गाजै॥ ७८॥

लगी शक्ति रामानुजै रामसाथी।
जड़ै ह्वै गये ज्यौं गिरै हेम हाथी॥
तिन्हैं ज्याइबे कों सुनौ प्रेमपाली।
चल्यो ज्वालमालीहिं लै कीर्तिमाली॥ ७९॥

किधौं प्रातही काल जी में विचार्यो।
चल्यो अंशु लै अंशुमाली सँहार्यो॥
किधौ जात ज्वालामुखी जोर लीन्हें।
महामृत्यु जामैं मिटै होम कीन्हें॥ ८०॥

बिना पत्र हैं यत्र पालाश फूले।
रमै कोकिलाली भ्रमैं भौर भूले॥
सदानंद रामैं महानंद को लै।
हनूमंत आये बसंतै मनो लै॥ ८१॥

[मोटनक छंद]

ठाढे भये लक्ष्मण मूरि छिये।
दूनी शुभ शोभ शरीर लिये॥
कोदंड लिये यह बात ररै।
लंकेश न जीवत जाइ घरै॥ ८२॥

श्रीराम तहीं उर लाइ लियो।
सूँघ्यो शिर आशिष कोटि दियो॥
कोलाहल यूथप यूथ कियो।
लंका हहली दसकंठ हियो॥ ८३॥

रावण प्रति कुंभकर्ण का उपदेश

[मनोरमा छंद]

कुंभकर्ण—सुनिए कुलभूषण देव-विदूषन।
बहु आजिविराजिन[1] के तुम पूषन॥
भव-भूप जे चारि पदारथ साधत।
तिनकौं कबहूँ नहि बाधक बाधत॥ ८४॥

[पंकजवाटिका छंद]

धर्म करत अति अर्थ बढावत।
संतति हित रति कोबिद गावत॥
संतति उपजत ही निसि-बासर।
साधत तन मन मुक्ति महीधर[2]॥ ८५॥

[दो०] राजा अरु युवराज जग, प्रोहित मन्त्री मित्र।
कामी कुटिल न सेइए, कृपण कृतघ्न अमित्र॥ ८६॥

[घनाक्षरी]

कामी बामी झूँठ क्रोधी कोढ़ी कुलद्वेषी खलु
कातर कृतघ्नी मित्रदोषी द्विजद्रोहिए।

---

(१) आजि = समर (में) + विराजी = शोभा पानेवाले = शूर-वीर लोग। (२) महीधर = राजा।

कुपुरुष किंपुरुष काहली कलही क्रूर
कुटिल कुमत्री कुलहीन केसौ ढोहिए ॥
पापी लोभी शठ अंध बावरो बधिर गूँगो
बौनो अविवेकी हठी छली निरमोहिए।
सूम सर्वभच्छी दववादी जो कुवादी जड
अपयसी ऐसो भूमि भूपति न सोहिए ॥८७॥

[निशिपालिका छद]

वानर न जानु सुर जानु सुभगाथ है।
मानुष न जानु रघुनाथ जगनाथ हैं॥
जानकिहिं देहु, करि नेहु कुल देह सों।
आजु रन साज पुनि गाजु हँसि मेह सो ॥८८॥

रावण-[दे।०] कुभकरन करि युद्ध कै सोइ रहौ घर जाइ।
वेगि बिभीषण ज्यौं मिल्यो, गहौ शत्रु के पाइ॥८९॥

कुंभकर्ण-युद्ध

[चामर छद]

कुभकर्ण रावनै प्रदच्छिनाहि दै चल्यो।
हाइ हाइ ह्वै रह्यो अकास आसु ही हल्यो॥
मध्य छुद्रघटिका किरीट सीस सोभनो।
लच्छ पच्छ सो कलिंद्र इद्र पै चढ्यो मनो ॥९०॥

[नाराच छद]

उड़ै दिसा दिसा कपीस कोरि कोरि स्वासहीं।
चपै चपेट पेट बाहु जानु जंघ सों तहीं॥

लिए है और ऐंचि ऐंचि वीर बाहु बातहीं।
भषे ते अंतरिच्छ रिच्छ लच्छ लच्छ जातहीं ॥९१॥

[भुजगप्रयात छंद]

कुंभकर्ण—न हौं ताडुका, हौं सुबाहै न मानौं।
न हौं शंभु-कोदंड, साँची बखानौं॥
न हौं ताल, बाली, खरे जाहि मारौ।
न हौं दूषणो, सिंधु, सूधै निहारौ॥९२॥
सुरी आसुरी सुंदरी भोग कर्णौं।
महाकाल को काल हौं कुंभकर्णौं॥
सुनौ राम संग्राम को तोहिं बोलौं।
बढ़्यो गर्व लंकाहि आये, सो खोलौं॥९३॥
उठ्यो केसरी केसरी जोर छायो।
बली बालि को पूत लै नील धायो॥
हनूमंत सुग्रीव सोभै सभागे।
डसै डाँस से अंग मातंग लागे॥९४॥
दसग्रीव को बंधु सुग्रीव पायो।
चल्यो लंक मैं लै भले अंक लायो॥
हनूमंत लातै हत्यो देह भूल्यो।
छुट्यो कर्ण नाशाहि लै इन्द्र फूल्यो॥९५॥
सँभार्‌यो घरी एक दू मैं मरू कै।
फिर्‌यो राम हीं सामुहै सौं गदा लै॥

हनूमत जू पूँछ सो लाइ लीन्हो
न जान्यौ कबै सिंधु मैं डारि दीन्हो ॥९६॥
जहीं काल के केतु सों ताल लीनो ।
करयो रामजू हस्त पादादि हीनो ॥
चल्यो लोटतै बाइ बक्रै कुचाली ।
उड़्यो मुंड लै बान ज्यो मुडमाली ॥९७॥
तहीं स्वर्ग के दुदुभी दीह बाजै ।
कर्‌यो पुष्प की वृष्टि जै देव गाजै ॥
दसग्रीव शोकै ग्रस्यो लोकहारी ।
भयो लक ही मध्य आतंक भारी ॥९८॥

दो०] तबही गयो निकुभिला, होम हेत इँद्रजीत ।
कह्यो तहाँ रघुनाथ सौं, मतो विभीषन मीत ॥९९॥

मेघनाद-वध

[चचरी छद]

रामचद्र बिदा करयो तब वेगि लक्ष्मण वीर कों ।
त्यो विभीषण जामवतहि सग अगद धीर को ॥
नील लै नल केसरी हनुमत अतक ज्यौ चले ।
वेगि जाइ निकुभिला थल यज्ञ के सिगरे दले ॥१००॥
जामवतहि मारि द्वै सर तीनि अगद छेदियो ।
चारि मारि विभीषनै हनुमत पंच सुबेधियो ॥
एक एक अनेक बानर जाइ लक्ष्मण सो भिरयो ।
अध अंधक युद्ध ज्यों भव सों जुरयो भव ही हरयो ॥१०१॥

[गीतिका छंद]

रन इंद्रजीत अजीत लक्ष्मण अस्त्र-शस्त्रनि संहरै।
शर एक एक अनेक मारत बुंद मदर ज्यौं परै॥
तब कोपि राघव शत्रु को सिर बान तीच्छन उद्धर्यो।
दसकंध संध्यहिं को कियो सिर जाइ अंजुलि मैं पर्यो॥१०२॥
रन मारि लक्ष्मण मेघनादहि स्वच्छ शंख बजाइयो।
कहि साधु साधु समेत इंद्रहि देवता सब आइयो॥
'कछु माँगिए वर वीर सत्वर' 'भक्ति श्रीरघुनाथ की।'
पहिराइ माल बिसाल अर्चहि कै गये सुभ गाथ की॥१०३॥

[कलहंस छंद]

हति इंद्रजीत कहँ लक्ष्मण आये।
हँसि रामचंद्र बहुधा उर लाये॥
सुनि मित्र पुत्र सुभ सोदर मेरे।
कहि कौन कौन सुमिरौं गुन तेरे॥१०४॥

[दो०] नींद भूख अरु प्यास कौ, जौ न साधते वीर॥
सीतहि क्यो हम पावते, सुनु लछिमन रनधीर॥१०५॥

रावण-विलाप

[दंडक]

रावण—आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल,
चंद आनंदमय ताप जग को हरौ।

मार्‌यो विभीषन गदा उर जोर ठेली।
काली समान भुज लक्ष्मण कठ मेली ॥ १०९ ॥
गाढ़े गहे प्रबल अंगनि अंग भारे।
काटे कटै न बहु भाँतिन काटि हारे ॥
ब्रह्मा दियो वरहि अस्त्र न शस्त्र लागै।
लै ही चल्यो समर सिंहहि जोर जागै ॥ ११० ॥
गाढ़ांधकार दिवि भूतल लोलि लीन्हो।
ग्रस्तास्त मानहुँ शशी कहँ राहु कीन्हो ॥
हाहादि शब्द सब लोग जहीं पुकारे।
बाढ़े अशेष अँग राक्षस के बिदारे ॥
श्री रामचंद्र पग लागत चित्त हर्षे।
देवाधिदेव मिलि सिद्धन पुष्प वर्षे ॥ १११ ॥

रावण कृत संधि-प्रस्ताव

[दो०] जूझत ही मकराक्ष के, रावन अति दुख पाइ।
सत्वर श्रीरघुनाथ पै, दियो बसीठ पठाइ ॥ ११२ ॥

[सुंदरी छंद]

दूतहि देखत ही रघुनायक। तापहँ बोलि उठे सुखदायक ॥
रावण के कुशली सुत सोदर। कारज कौन करै अपने घर ॥११३॥

दूत— [विजय छंद]

पूजि उठे जबहीं शिव को तबहीं विधि शुक्र बृहस्पति आये।
कै विनती मिस कश्यप के तिन देव अदेव सबै बकसाये ॥

होम की रीति नई सिखई कछु मन्त्र दियो श्रुति लागि सिखाये।
हौं इत को पठयो उनको, उत लै प्रभु मदिर माँझ सिधाये ॥११४॥

संदेश

शूर्पणखा जो विरूप करी तुम तात कियो हमहूँ दुख भारौ।
वारिधि बधन कीन्हों हुतो तुम मो सुत बधन कीन्हों तिहारौ॥
होइ जो होनी सो ह्वै ही रहै, न मिटै, जिय कोटि विचार विचारौ।
दै भृगुनंदन को परसा रघुनदन सीतहिं लै पगु धारौ ॥११५॥

[दो०] प्रति-उत्तर दूतहि दियो, यह कहि श्री रघुनाथ।
कहियो रावन होहिं जब, मदोदरि के साथ ॥११६॥

[सयुता छंद]

रावण—कहि धौं विलब कहा भयो। रघुनाथ पै जब तू गयो।
केहि भाँति तू अवलोकियो। कहु तोहि उत्तर का दियो ॥११७॥

[दडक]

दूत—भूतल के इद्र भूमि पौढे हुते रामचद्र,
मारीच कनकमृगछालहि बिछाये जू।
कुभहर कुभकर्णनासाहर गोद सीस
चरन अकप अच्छ-अरि उर लाये जू॥
देवांतक नारांतक अतक त्यों मुसक्यात,
विभीषन बैन तन कानन रुखाये जू।
मेघनाद मकराच्छ महोदर प्रानहर,
बान त्यों बिलोकत परस सुख पाये जू॥ ११८॥

राम-संदेश

[विजय छंद]

भूमि दयी भुवदेवन को भृगुनंदन भूपन सों बर[1] लैकै।
वामन स्वर्ग दियो मघवै सो बली बलि बाँधि पताल पठै कै।
संधि की बातन कौ प्रतिउत्तर आपुनही कहिए हित कैकै।
दीन्हीं है लंक विभीषन को, अब देहि कहा तुमकों यह दैकै ॥११९॥

मंदोदरी— [मालिनी छंद]

तब सब कहि हारे राम को दूत आयो।
अब समुझि परी जो पुत्र-भैया जुझायो ॥
दसमुख सुख जीजै राम सों हौं लरौं यौं।
हरि हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यौं ॥१२०॥

रावण—छल करि पठयो तो पावतो जो कुठारै।
रघुपति बपुरा को? धावतो सिंधु पारै ॥
हति सुरपति भर्ता, विष्णु मायाविलासी।
सुनहि सुमुखि तोकों ल्यावतो लच्छिदासी ॥१२१॥

रावण-यज्ञ-विध्वंस

[चामर छंद]

प्रौढ़रूढ़िकोश[2] मूढ़ गूढ गेह में गयो।
शुक्रमंत्र सोधि सोधि होम कों जहीं भयो ॥

---

(१) बर = बलपूर्वक। (२) प्रौढ़रूढ़िकोश = पक्की ढिठाई का समूह; अति ढीठ।

वायुपुत्र, बालिपुत्र, जामवंत धाइयो ।
लंक में निसंक अंक[1] लंकनाथ पाइयो ॥१२२॥
मत्त दंति-पंक्ति वाजिराजि छोरिकै दयी ।
भाँति भाँति पच्छि-राजि भाजि भाजिकै गयी ।
आसने बिछावने वितान तान तूरियो ।
यत्र तत्र छत्र चारु चौंर चारु चूरियो ॥१२३॥

[भुजंगप्रयात छंद]

भगी देखिकै संकि लंकेस बाला ।
दुरी दौरि मंदोदरी चित्रसाला ॥
तहाँ दौरिगो बालि को पूत फूल्यो ।
सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो ॥१२४॥
गहै दौरि जाको तजै ताकि ताको ।
तजै जा दिशा को भजै बाम ताको ॥
भली कै निहारी सबै चित्रसारी ।
लहै सुंदरी क्यौं दरी को बिहारी ॥१२५॥
तजै दृष्टि कों चित्र की सृष्टि धन्या ।
हँसी एक ताको तहीं देव-कन्या ॥
तहीं हासही देव-कन्या दिखाई ।
गही संकि कै लंकरानी बताई ॥१२६॥
सुआनी गहे केस लंकेस-रानी ।
तमश्री मनौ सूर सोभानि सानी ॥

---

(१) अंक = राज-चिह्नादि ।

गहे बाँह ऐचे चहूँ ओर ताकों।
मनो हंस लीन्हे मृणाली लता कों ॥१२७॥
छुटी कंठमाला, लुरैं हार टूटे।
खसैं फूल फूले, लसैं केश छूटे॥
फटी कंचुकी, किंकिनी चारु छूटी।
पुरी काम की सी मनौ रुद्र लूटी ॥१२८॥
सुनी लंकरानीन की दीन बानी।
तहीं छाडि दीन्हो महा मौन मानी॥
उठ्यो सो गदा लै यदा लंकवासी।
गये भागि कै सर्व साखा विलासी ॥१२९॥

मंदोदरी—[दो०] सीतहि दीन्हो दुख वृथा, साँचो देखौ आजु।
करै जो जैसी त्यौं लहै, कहा रंक कह राजु ॥१३०॥

रावण— [विजय छंद]
को बपुरा जो मिल्यो है विभीषन, है कुलदूषन, जीवैगो कौ लौं।
कुंभकरन्न मर्‍यो मघवारिपु तौ री कहा न डरौं यम सौं लौं॥
श्री रघुनाथ के गातनि सुंदरि, जानै न तू कुसली तनु तौ लौं।
साल सबै दिगपालन के कर, रावन के करवाल है जौ लौं ॥१३१॥

राम-रावण-युद्ध

[चामर छंद]

रावनै चले चले ते धाम धाम ते सबै।
साजि साजि साज सूर गाजि गाजि कै तबै॥

दीह दुंदुभी अपार भाँति भाँति बाजहीं।
युद्धभूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति राजहीं॥ १३२॥

[चंचरी छंद]

इंद्र श्रीरघुनाथ को रथहीन भूतल देखि कै।
बेगि सारथि सों कह्यो रथ जाहि लै सुविशेषि कै॥
तून अच्छय बाण स्वच्छ अभेद लै तनत्रान को।
आइयो रणभूमि में करि अप्रमेय[1] प्रनाम को॥ १३३॥
कोटि भाँतिन पौन ते मन ते महा लघुता[2] लसै।
बैठिकै ध्वज अग्र श्रीहनुमंत ज्यों तरु ज्यों हँसै॥
रामचंद्र प्रदच्छिना करि दच्छ ह्वै जबहीं चढ़े।
पुष्प वर्षि बजाय दुंदुभि देवता बहुधा बढ़े॥ १३४॥
राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावन के बढ़्यो।
बीस बाहुन की सरावलि व्योम भूतल मों मढ़्यो॥
सैल ह्वै सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे।
रुच्छ बानर भेदि तच्छन लच्छधा छतना करे॥ १३५॥

[सुंदरी छंद]

बानन साथ बिधे सब बानर।
जाय परे मलयाचल की धर॥
सूरजमंडल में एक रोवत।
एक अकासनदी मुख धोवत॥ १३६॥

एक गये यमलोक सहे दुख।
एक कहैं भव भूतन सौ रुख ॥
एक ते सागर माँझ परे मरि।
एक गये बडवानल में जरि॥ १३७॥

[मोटनक छंद]

श्रीलक्ष्मण कोप कर्‌यो जबहीं।
छोड्यो सर पावक को तबही॥
जार्‌यो सर पजर छार कर्‌यो।
नैऋत्यन[1] को अति चित्त डर्‌यो॥ १३८॥
दौरै हनुमत बली बल सों।
लै अंगद संग सबै दल सों॥
मानौ गिरिराज तजे डर कों।
घेरै चहुँ ओर पुरंदर कों॥ १३९॥

[हरिच्छंद]

अंगद रनअंगन सब अंगन मुरझाइ कै।
ऋच्छपतिहिँ अच्छरिपुहिँ लच्छगति बुझाइ कै॥
बानरगन बानन सन केसव जबही मुर्‌यो।
रावन दुखदावन जगपावन समुहे जुर्‌यो॥ १४०॥

[ब्रह्मरूपक छंद]

इंद्रजीत-जीत आनि रोकियो सुबान तानि।
छोड़ि दीन वीर बानि कान के प्रमान आनि॥

---
(१) नैऋत्य=राक्षस।

स्यौं पताक काटि चाप चर्म बर्म मर्म छेदि।
जात भो रसातलै असेस कठमाल भेदि ॥१४१॥

[दडक छद]

सूरज[1] मुसल, नील पट्टिस, परिघ नल,
जामवत असि, हनू तोमर प्रहारे है।
परसा सुखेन, कुत केशरी, गवय शूल,
विभीषण गदा, गज भिंदिपाल[2] तारे हैं॥
मोगरा द्विविद, तीर कटरा, कुमुद नेजा,
अगद सिला, गवाक्ष विटप बिदारे है।
अकुश शरभ, चक्र दधिमुख, शेष शक्ति
बान तिन रावन श्रीरामचद्र मारे हैं ॥१४२॥

दो०] द्वैभुज श्रीरघुनाथ सैा, बिरचे युद्ध विलास।
बाहु अठारह यूथपनि, मारे केसौदास ॥१४३॥

[गगोदक छद]

युद्ध जोई जहाँ भाँति जैसी करै
ताहि ताही दिसा रोकि राखै तहीं।
अस्त्र लै आपने शस्त्र काटै सबै
ताहि केहूँ कहूँ घाव लागै नहीं॥
दौरि सौमित्र लै बाण कोदड यों
खड खडी ध्वजा धीर छत्रावली।

शैल-शृंगावली छोडि मानौ उडी
एक ही बेर कै हस-बसावली ॥ १४४ ॥

[त्रिभगी छद]

लछमन शुभ-लच्छन बुद्धि-बिचच्छन रावन सैा रिस छोड दयी ।
बहु बाननि छडै जे सिर खडै ते फिर मंडै सोभ नयी ॥
यद्यपि रनपडित, गुन-गन मडित, रिपु-बल खडित, भूल रहे ।
तजि मन बच कायक, सूर सहायक, रघुनायक सों वचन कहे॥१४५॥
ठाढ़ो रण राजत, केहुँ न भाजत, तन मन लाजत, सब लायक ।
सुनि श्रीरघुनदन, मुनिजन-वंदन दुष्ट-निकदन, सुखदायक ॥
अब टरै न टार्यो, मरै न मार्यो, हैां हठि हार्यो धरि सायक ।
रावन नहि मारत देव पुकारत ह्वै अति आरत जगनायक ॥१४६॥

रावण-वध

छप्पै

राम—जेहि सर मधु मद मरदि महासुर मर्दन कीन्हेउ ।
मारेउ कर्कश नर्क, शंख हति शख जो लीन्हेउ ॥
निष्कटक सुर-कटक कर्यो कैटभ-बपु खंड्यो ।
खर दूषन त्रिसिरा कबध तरु खंड विहंड्यो ॥
कुभकरन जेहि सहर्यो पल न प्रतिज्ञा ते टरौं ।
तेहि बान प्रान दसकठ के कंठ दसौ खडित करौं ॥१

[दो०] रघुपति पठयो आसुही, असुहर बुद्धिनिधान ।
दससिर दसहूँ दिसन को, वलि दै आयो बान ॥ १४८

[मदनमनोरमा छंद]

भुव भारहि संयुत राकस को
गण जाइ रसातल मैं अनुराग्यो।
जग मैं जय शब्द समेतिहिं केसव
राज विभीषन के सिर जाग्यो॥
मय दानव नंदिनि के सुख सो
मिलि कै सिय के हिय को दुख भाग्यो।
सुर दुंदुभी सीस गजा[1], सर राम को
रावन के सिर साथहि लाग्यो॥१४९॥

[विजय छंद]

मंदोदरी—जीति लिये दिगपाल, सची के
उसासन देवनदी सब सूकी।
बासरहू निसि देवन की,
नर देवन की रहै संपति ढूकी॥
तीनहुँ लोकन की तरुनीन
की बारी बँधी हुती दंड दुहू की।
सेवत स्वान सृगाल सौं रावन
सोवत सेज परे अब भू की॥१५०॥

[तारक छंद]

राम—अब जाहु विभीषन रावन लैकै।
सकलत्र सबंधु क्रिया सब कैकै॥

---

(१) गजा = चोब (नगाडा बजाने की)।

जन सेवक सपति कोष सँभारौ।
मयन दिनि के सिगरे दुख टारौ ॥१५१॥

सीता की अग्नि-परीक्षा

राम—जय जाय कहौ हनुमत हमारौ।
सुख देवहु दीरघ दुःख विदारौ॥
सब भूषन भूषित कै सुभगीता।
हमको तुम वेगि दिखावहु सीता ॥१५२॥

हनुमत गये तबहीं जहँ सीता।
तब जाय कही जय की सब गीता॥
पग लागि कह्यो जननी पगु धारौ।
मग चाहत है रघुनाथ तिहारौ ॥१५३॥

सिगरे तन भूषन भूषित कीने।
धरि कै कुसुमावलि अंग नवीने॥
द्विज देवनि बंदि पढी सुभगीता।
तब पावक अंक चली चढ़ि सीता ॥१५४॥

[भुजगप्रयात छंद]

सवस्त्रा सबै अंग शृंगार सोहैं।
विलोके रमा देव देवी विमोहैं॥
पिता-अंक ज्यौं कन्यका शुभ्रगीता।
लसै अग्नि के अंक त्यौं शुद्ध सीता ॥१५५॥

महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी।
कि सग्राम की भूमि मैं चडिका सी॥
मनौ रत्नसिंहासनस्था सची है।
किधौं रागिनी राग पूरे रची है॥१५६॥
गिरापूर मे है पयोदेवता सी।
किधौं कज की मजु शोभा प्रकासी।
किधौं पद्म ही मैं सिफाकद सोहै।
किधौं पद्म के कोष पद्मा विमोहै॥१५७॥
कि सिंदूरशैलाग्र मैं सिद्ध-कन्या।
किधौं पद्मिनी सूर-संयुक्त धन्या॥
सरोजासना है मनौ चारु वानी।
जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी॥१५८॥
मनौ ओपधी वृ द मैं रोहिणी सी।
कि दिग्दाह मैं देखिए योगिनी सी॥
धरापुत्र ज्यौ स्वर्ण माला प्रकासै।
मनौ ज्योति सी तच्छकाभोग[1] भासै॥१५९॥

[सुरेद्रवज्रा छद]

आसावरी माणिक कु भ शोभै अशोकलग्ना वनदेवता सी।
पालाशमाला कुसुमालि मध्ये वसतलक्ष्मी शुभलक्षणा सी॥

---

(१) तच्छकाभोग (तच्छक + आभोग) = तक्षक नामक सर्प का फण।

आरक्तपत्रा शुभि चित्र पुत्री मनौ विराजै अति चारुवेषा।
संपूर्ण सिंदूर प्रभा सुमंडी गणेश भालस्थल चंद्ररेखा ॥१६०॥

[विजय छंद]

है मणिदर्पण मै प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज प्रताप मै कीरति सी तप-तेजन मै मनौ सिद्धि विनीता॥
ज्यौ रघुनाथ तिहारियै भक्ति लसै उर केसव के शुभ गीता।
त्यौं अवलोकिय आनँदकंद हुतासन मध्य सबासन सीता ॥१६१॥

[दो०] इंद्र बरुण यम सिद्ध सब, धर्म सहित धनपाल।
ब्रह्म रुद्र लै दसरथहि, आय गये तेहि काल ॥१६२॥

[वसततिलका छंद]

अग्नि—श्री रामचंद्र यह संतत शुद्ध सीता।
ब्रह्मादि देव सब गावत शुभ्र गीता॥
हूजै कृपालु गहिजै जनकात्मजाया।
योगीश ईश तुम हौ यह योगमाया ॥१६३॥
श्रीरामचंद्र हँसि अंक लगाय लीन्हों।
संसार-साखि शुभ पावक आनि दीन्हों॥
देवान दुंदुभि बजाय सुगीत गाये।
त्रैलोक्य लोचन चकोरनि चित्र भाये ॥१६४॥

स्वदेश-प्रत्यागम

[दो०] बानर राच्छस रिच्छ सब, मित्र कलत्र समेत।
पुष्पक चढ़ि रघुनाथ जू, चले अवधि के हेत ॥१६५॥

[चचरी छद]

सेतु सीतहि सोभना दरसाइ पचवटी गये।
पाइँ लागि अगस्त्य के पुनि अत्रियौ ते बिदा भये॥
चित्रकूट विलोकि कै तब ही प्रयाग बिलोकियो।
भरद्वाज वसैं जहाँ जिनतै न पावन है बियो॥१६६॥

त्रिवेणी-वर्णन

[चद्रकला]

भवसागर की जनु सेतु उजागर, सुंदरता सिगरी बस की।
तिहुँ देवन की द्युति सी दरसै गति सोखै त्रिदोखन के रस की॥
कहि केसव वेदत्रयी मति सी, परितापत्रयी तल को मसकी।
सब वदैं त्रिकाल त्रिलोक त्रिवेणिहिं केतु त्रिविक्रम[1] के जस की॥१६७॥

भरद्वाज आश्रम वर्णन

[दडक]

लक्ष्मण—केसोदास मृगज बछेरू चूसै वाघिनीन,
चाटत सुरभि वाघ-बालक-वदन है।

---

(१) विष्णु का वह विराट् रूप त्रिविक्रम कहलाता है जिसमें उन्होंने तीन ही पग में सारी पृथ्वी नापकर बलि को पाताल भेजा था। इसी अवसर पर ब्रह्माजी ने अपने कमडलु के जल से विष्णु भगवान् के पाँव धोए थे जिससे त्रिपथगा गगा प्रवाहित हुई। त्रिवेणी में गगाजी की प्रधानता विशेष रूप से परिलक्षित होती है, इसी से वह विष्णु के यश की पताका है।

सिंहन की सटा[1] ऐंचैं कलभ करनि करि,
सिंहन कौ आसन गयद को रदन है ॥
फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे[2] अंध तापसनि,
सिव कौ समाज कैधौं ऋषि को सदन है ॥ १६८ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

गहे केसपासै प्रियासी बखानौं।
कँपै साप के त्रास तैं गात मानौ ॥
मनौ चद्रमा चद्रिका चारु साजैं।
जरा सो मिले यौं भरद्वाज राजैं ॥ १६९ ॥

[दो०] भस्मत्रिपुंडक सोभिजै, बरनत बुद्धि उदार।
मनौ त्रिस्रोतासोत द्युति, वदत लगी लिलार ॥ १७० ॥
फटिकमाल सुभ सोभिजै, उर ऋषिराज उदार।
असल सकल श्रुतिवरनमय, मनौ गिरा को हार ॥ १७१ ॥

[पद्धटिका छंद]

सीता समेत शेषावतार। दंडवत किये ऋषि के अपार ॥
नरवेष विभीषण जामवत। सुग्रीव बालिसुत हनूमंत ॥१७२॥
ऋषिराज करी पूजा अपार। पुनि कुशल प्रश्न पूँछी उदार ॥
शत्रुघ्न भरत कुसली निकेत। सब मित्र मत्रि मातन समेत ॥१७३॥

---

(१) सटा = गर्दन के बाल, अयाल। (२) डोरे डोरे = डोरिआए डोरिआए; साथ लिए हुए।

[तोटक छंद]

राम—हनुमत बली तुम जाहु तहाँ।
मुनि-वेष भरत्थ बसंत जहाँ॥
ऋषि के हम भोजन आजु करैं।
पुनि प्रात भरत्थहिं अंक भरैं॥१७४॥

(इति लंका कांड)

उत्तर कांड

[चतुष्पदी छंद]

हनुमत विलोके भरत ससोके अंग सकल मलधारी।
बकला पहिरे तन, सीस जटा गन, हैं फल मूल अहारी॥
बहु मंत्रिनगन मैं राज-काज मैं सब सुख सौं हित तोरे।
रघुनाथ-पादुका तन मन प्रभु करि सेवत अंजुलि जोरे॥ १॥

भरत प्रति राम संदेश

हनुमान्—

सब सोकनि छाँड़ौ, भूषन माँडौ, कीजे विविध बधाये।
सुर-काज सँवारे, रावन मारे, रघुनंदन घर आये॥
सुग्रीव सुयोधन, सहित विभीषन, सुनहु भरत शुभ गीता।
जय कीरति ज्यौं सँग अमल सकल अँग सोहत लछमन सीता॥ २॥

[पद्धटिका छंद]

सुनि परम भावती भरत बात।
भये सुख-समुद्र मैं मगन गात॥
यह सत्य किधौं कछु स्वप्न ईस।
अब कहा कह्यो मोसन कपीस॥ ३॥
जैसे चकोर लीलै अँगार।
तेहि भूलि जाति सिगरी सँभार॥

जी उठत उवत ज्यों उदधिनंद[1] ।
त्यौं भरत भये सुनि रामचंद ॥ ४ ॥
ज्यौ सोइ रहत सब सूरहीन ।
अति ह्वै अचेत यद्यपि प्रवीन ॥
ज्यौं उवत उठत हँसि करत भोग ।
त्यौं रामचद्र सुनि अवध लोग ॥ ५ ॥

[मालिनी छंद]

जहँ तहँ गज गाजै दुंदुभी दीह बाजै ।
बहुवरण पताका स्यंदनाश्वादि राजै ॥
भरत सकल सेना मध्य यौं वेष कीने ।
सुरपति जनु आये मेघमालानि लीने ॥ ६ ॥
सकल नगरबासी भिन्न सेनानि साजैं ।
रथ सुगज पताका झुंडझुंडानि राजै ॥
थल थल सब शोभै शुभ्र शोभानि छायी ।
रघुपति सुनि मानों औधि सी आज आयी ॥ ७ ॥

[चामर छंद]

यत्र तत्र दास ईस व्योम तै विलोकहीं ।
वानरालि रीछराजि दृष्टि सृष्टि रोकहीं ॥
ज्यौ चकोर मेघ-ओघ मध्य चंद्र लेखहीं ।
भानु के समान जान त्यौं विमान देखहीं ॥ ८ ॥

---

१) उदधिनंद = चंद्रमा ।

राम-भरत-मिलन

[मदनमनोहर दंडक]

आवत विलोकि रघुबीर लघु वीर तजि
व्योम गति भूतल विमान तब आइयो।
राम पद-पद्म सुख-सद्म कहँ बंधु युग
दौरि तब षट्पद समान सुख पाइयो ॥
चूमि मुख सूँघि सिर अंक रघुनाथ धरि
अश्रु-जल-लोचननि पेखि उर लाइयो।
देव मुनि वृद्ध परसिद्ध सब सिद्ध जन
हर्षि तन पुष्प-बरषानि बरषाइयो ॥ ९ ॥

[दो०] भरत-चरण लक्ष्मण परे, लक्ष्मण के शत्रुघ्न।
सीता पग लागत दियो, आशिष शुभ शत्रुघ्न ॥ १० ॥
मिले भरत अरु सत्रुहन, सुग्रीवहि अकुलाइ।
बहुरि विभीषन को मिले, अंगद को, सुख पाइ ॥ ११ ॥

[आभीर छंद]

जामवंत नल नील। मिले भरत शुभ शील ॥
गवय गवाक्ष गयंद। कपिकुल सब सुखकंद ॥ १२ ॥
ऋषि वशिष्ठ को देखि। जन्म सफल करि लेखि ॥
राम परे उठि पाय। लक्ष्मण सहित सुभाय ॥ १३ ॥

[दो०] लै सुग्रीव विभीषणहिं, करि करि बिनय अनंत।
पाँयन परे वसिष्ठ के, कविकुल बुधि बलवंत ॥ १४ ॥

राम— [पद्धटिका छद]

सुनिजै वसिष्ठ कुलइष्टदेव । इन कपिनायक के सकल भेव ॥
हम बूडत हे बिपदा-समुद्र । इन राखि लियो संग्राम रुद्र ॥१५॥

अवध-प्रवेश

[सु दरी छद]

अवधपुरी कहँ राम चले जब । ठौरहि ठौर बिराजत हैं सब ॥
भरत भये शुभ सारथि शोभन । चमर धरे रविपुत्र विभीषन ॥१६॥

[तोमर छद]

लीनी छरी दुहुँ बीर । शत्रुघ्न लच्मण धीर ॥
टारैं जहाँ तहँ भीर । आन दयुक्त शरीर ॥१७॥

[दोधक छद]

भूतल हू दिवि भीर बिराजै । दीह दुहूँ दिसि दुदुभि बाजै ॥
भाट भले बिरदावलि गावै । मोद मनौ प्रतिबिंब वढ़ावै ॥१८॥
भूतल की रज देव नसावै । फूलन की वरषा बरषावै ॥
हीन-निमेष सबै अवलोकै । होड परी वहुधा दुहुँ लोकै ॥१९॥

अवध-वर्णन

[विजय छ द]

चढ़ीं प्रतिमदिर सोभ वढीं,
तरुनी अवलोकन कों रघुन दनु ।
मनौ गृहदीपति देह धरे,
सु किधौ गृहदेवि विमोहति है मनु ॥

किधौं कुलदेवि दिये अति केसव,
कै पुरदेविन को हुलस्यो गनु।
जहीं सो तहीं यहि भाँति लसै,
दिवि देविन को मद घालति है मनु ॥२०॥

[पद्मावती छंद]

रघुनंदन आये, सुनि सब धाये पुर-जन जैसे तैसे।
दर्शन रस भूले तन मन फूले, बरने जाहिं न जैसे॥
पति के सँग नारी सब सुखकारी रामहिं यौं दृग जोरी।
जहँ तहँ चहुँ ओरनि मिली भकोरनि चाहति चंद चकोरी ॥२१॥

[पद्धटिका छंद]

बहु भाँति राम प्रति द्वार द्वार।
अति पूजत लोग सबै उदार॥
यहि भाँति गये नृपनाथ[1] गेह।
युत सुंदरि सोदर स्यौं सनेह ॥२२॥

[दो०] मिले जाय जननीन को, जबही श्री रघुराइ।
करुना रस अद्भुत भयो, मोपै कह्यो न जाइ ॥२३॥
सीता सीतानाथजू, लक्ष्मन सहित उदार।
सबन मिले सब के किये, भोजन एकै बार ॥२४॥

[सो०] पुरजन लोग अपार, यहई सब जानत भये।
हमहीं मिले अगार[2], आये प्रथम हमारेही ॥२५॥

---

(१) नृपनाथ = राजा दशरथ। (२) अगार = सबसे अगाडी (पहले)।

[मदनहरा छंद]

सँग सीता लक्ष्मन श्रीरघुनंदन ।
मातन के सुभ पाइ परे सब दुःख हरे ॥
आँसुन अन्हवाये भागनि आये ।
जीवन पाये अंक भरे अरु अंक धरे ॥
ते वदन निहारैं सरवसु वारैं ।
देहिं सबै सबहीन घनो अरु लेहिं घनो ॥
तन मन न सँभारैं यहै विचारैं ।
भाग बडो यह है अपनो किधौं है सपनो ॥२६॥

[स्वागता छंद]

धाम धाम प्रति होति बधाई । लोक लोक तिनकी धुनि धाई ॥
देखि देखि कपि अद्भुत लेखैं । जाहिं यत्र तित रामहिं देखै ॥२७॥
दौरि दौरि कपि रावर[1] आवै । बार बार प्रति धामनि धावैं ॥
देखि देखि तिनको दै तारी । भाँति भाँति विहँसै पुरनारी ॥२८॥

राम-सुमित्रा-संवाद

राम-[दो०] इन सुग्रीव विभीषन, अंगद अरु हनुमान ।
सदा भरत शत्रुघ्न सम, माता जी मैं जान ॥२९॥
सुमित्रा-[सो०] प्राननाथ रघुनाथ, जिय की जीवनमूरि हौ ।
लक्ष्मन है तुम साथ, छमियहु चूक परी जो कछु ॥३०॥

---

(१) रावर = रनवास ।

[दण्डक]

राम—पौरिया कहौं कि प्रतीहार कहौं, किधौं प्रभु,
पुत्र कहौं मित्र, किधौं मन्त्री सुखदानिए।
सुभट कहौं कि शिष्य, दास कहौं किधौं दूत,
केसौदास हाथ कौ हथ्यार उर आनिए॥
नैन कहौं, किधौं तन मन, किधौं तनत्रान,
बुद्धि कहौं, किधौं बल-विक्रम बखानिए।
देखिबे को एक है, अनेक भाँति कीन्हीं सेवा,
लखन के मात! कौन कौन गुन मानिए॥३१॥

श्रीराम-कथित राज्यश्री-निंदा

अगस्त्य–[दो०] मारे अरि पारे हितू, कौन हेत रघुनंद।
निरानंद से देखियत, यद्यपि परमानंद॥३२॥

श्रीराम— [तोमर छंद]

सुनि ज्ञान मानसहंस। जप योग जाग प्रशंस॥
जग माँझ है दुख-जाल। सुख है कहाँ यहि काल॥३३॥
तहँ राज है दुख-मूल। सब पाप को अनुकूल॥
अब ताहि लै ऋषिराय। कहि कौन नर्कहि जाय॥३४॥

[दो०] धर्मवीरता विनयता, सत्यशील आचार।
राजश्री न गने कछू, वेद पुराण बिचार॥३५॥

[चौपाई]

सागर मे बहुकाल जो रही। सीत वक्रता शशि ते लही॥
सूर तुरँग चरणनि ते तात। सीखी चचलता की बात॥३६॥

कालकूट तैं मोहन रीति। मनिगन तै अति निष्ठुर प्रीति ॥
मदिरा तैं मादकता लयी। मदर उदर भयी भ्रममयी ॥३७॥

[दो०] शेष दई बहुजिह्वता, बहुलोचनता चारु।
अप्सरानि तै सीखियो, अपर पुरुष सचारु ॥ ३८ ॥

रामविरक्ति-वर्णन

[विजय छंद]

खैचत लोभ दशौ दिशि को महि
मोह महा इत पासि कै डारे।
ऊँचे ते गर्ब गिरावत क्रोध सो
जीवहि लूहर[1] लावत भारे॥
ऐसे मो कोढ़ की खाजु[2] ज्यो केसव
मारत काम के बाण निनारे[3]।
मारत पाँच करे पँचकूटहिं[4]
कासौं कहैं जगजीव बिचारे॥ ३९ ॥

[दो०] आँखिन आछत आँधरो, जीव करै बहु भाँति।
धीरन धीरज बिन करै, तृष्णा कृष्णा राति ॥ ४० ॥

[सुंदरी छंद]

जैसहि हो अब तैसहि हों जग।
आपद सपद के न चलों मग॥

---

(१) लूहर = लूगर, लुआठ। (२) कोढ की खाजु = दुःख को और अधिक बढानेवाली वस्तु। (३) निनारे = न्यारे ही। (४) पचकूट = पाँच जनों का गुट या समूह।

एकहि देह तियाग बिना मुनि।
हौं न कछू अभिलाष करौं मुनि ॥ ४१ ॥
जो कुछ जीवउधारण को मत।
जानत हौ तौ कहौ तनु है रत ॥
यो कहि मौन गही जगनायक।
केसवदास मनो - बच - कायक ॥ ४२ ॥

वसिष्ठ-कथित मुक्तिमार्ग

[पद्धटिका छ द]

वसिष्ठ—तुम आदि मध्य अवसान एक।
अरु जीव जन्म समुझो अनेक ॥
तुमहीं जो रची रचना बिचारि।
तेहि कौन भाँति समुझौं मुरारि ॥ ४३ ॥
सब जानि बूझियत मोहिं राम।
सुनिए सो हौं जग ब्रह्म नाम ॥
तिनके अशेप प्रतिबिंब जाल।
त्यइ जीव जानि जग मैं कृपाल ॥ ४४ ॥

[निशिपालिका छ द]

लोभ मद मोह बस काम जबहीं भयो।
भूलि गये रूप निज बीधि तिनसों गयो ॥ ४५ ॥

[दो०] मुक्तिपुरी दरबार के, चारि चतुर प्रतिहार[1]।
साधुन को सतसग सम[2], अरु सतोप विचार ॥ ४६ ॥

---

(१) प्रतिहार = दरवान। (२) सम = समता।

यह जग चक्राव्यूह किय, कज्जल-कलित अगाधु ।
तामहँ पैठि जो नीकसै, अकलंकित सो साधु ॥ ४७ ॥

[दोधक छंद]

देखतहूँ एक काल छियेहूँ ।
बात कहै सुनै भोग कियेहूँ ॥
सोवत जागत नेक न छोभै ।
सो समता सबही महँ सोभै ॥ ४८ ॥
जी अभिलाष न काहु की आवै ।
आये गये सुख दु:ख न पावै ॥
लै परमानँद सों मन लावै ।
सो सब माँझ सँतोष कहावै ॥ ४९ ॥
आयौ कहाँ, अब हौं कहि को हौं ।
ज्यौं अपनो पद पाऊँ, सो टोहौं ॥
बंधु अबंधु हिये महँ जानै ।
ता कहँ लोग बिचार बखानै ॥ ५० ॥

[पद्धटिका छंद]

जग जिनको मन तव चरण लीन ।
तन तिनको मृत्यु न करति छीन ॥
तेहि छनही छन दुख छीन होत ।
जिय करत अमित आनँद उदोत ॥ ५१ ॥
जो चाहै जीवन अति अनंत ।
सो साधै प्राणायाम मंत ॥

शुभ रेचक पूरक नाम जानि।
अरु कुंभकादि सुखदानि मानि॥ ५२॥
जो क्रम क्रम साधै साधु धीर।
सो तुमहि मिलै याही सरीर॥
राम—जग तुमतै नहिं सर्वज्ञ आन।
अब कहौ देव पूजा-विधान॥ ५३॥

[तोमर छद]

वसिष्ठ—"सतचित्प्रकाश प्रभेव। तेहि वेद मानत देव॥
तेहि पूजि ऋषि* रुचि मडि। सब प्राकृतन को छंडि॥ ५४॥
पूजा यहै उर आनु। निर्व्याज धरिए ध्यानु॥
यों पूजि घटिका एक। मनु कियो याग अनेक"॥ ५५॥

[दो०] यह पूजा अद्भुत अगिनि, सुनि प्रभु त्रिभुवन नाथ।
सबै शुभाशुभ वासना, मैं जारी निज हाथ॥ ५६॥

[झूलना छद]

यहि भाँति पूजा पूजि जीव जो भक्त परम कहाइ।
भव भक्तिरस भागीरथी महँ देहि दुखनि बहाइ॥
पुनि महाकर्त्ता महात्यागी महाभोगी होइ।
अति शुद्ध भाव रमै रमापति पूजिहै सब कोइ॥ ५७॥

---

* वसिष्ठजी ने एक बार हिमालय पर जाकर घोर तपस्या की। शिवजी ने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने को कहा। वसिष्ठजी ने कहा—"देव-पूजा-विधान बताइए।" इसके उत्तर में शिवजी ने जो कुछ कहा, उसी को इन दो पद्यों (५४,५५) मे वसिष्ठजी राम के सामने दोहरा रहे हैं।

[दो०] राग द्वेष बिन कैसहूँ, धर्माधर्म जो होइ।
हर्ष शोक उपजै न मन, कर्त्ता महा सो लोइ ॥५८॥
भोज अभोजन रत विरत, नीरस सरस समान।
भोग होइ अभिलाष बिन, महा भोगता मान ॥५९॥
जो कछु आँखिन देखिए, बाणी बर्ण्यो जाहि।
महातियागी जानिए, झूठो जानै ताहि ॥६०॥

[तोमर छंद]

जिय ज्ञान बहु ब्यौहार। अरु योग भोग बिचार॥
यहि भाँति होइ जो राम। मिलिहैं सो तेरे धाम ॥६१॥

[सवैया]

निशि-बासर बस्तुबिचार करै मुख साँच हिये करुना धनु है।
अघ निग्रह संग्रह धर्मकथा सु-परिग्रह साधन को गनु है॥
कहि केसव योग जगै हिय भीतर बाहेर भोगन सो तनु है।
मन हाथ सदा जिनके तिनको बन ही घर है, घर ही बनु है ॥६२॥
[दो०] लेइ जो कहिए साधु अन-लीन्हे कहिए बाम।
सबकौ साधन एक जग, राम तिहारो नाम ॥६३॥

[तामरस छंद]

जब सब वेद पुरान नसैहैं। जप तप तीरथहू मिटि जैहैं।
द्विज सुरभी नहिं कोउ बिचारै। तब जग केवल नाम उधारै ॥६४॥
[दो०] मरनकाल कासी विषे, महादेव निजधाम।
जीवन कों उपदेसिहैं, रामचद्र को नाम ॥६५॥

मरनकाल कोऊ कहै, पापी होइ पुनीत।
सुखही हरिपुर जाइहै, सब जग गावै गीत ॥६६॥
रामनाम के तत्त्व को, जानत वेद प्रभाव।
गंगाधर कै धरनिधर, बालमीकि मुनिराव ॥६७॥
मोहिं न हुतो जनाइबे, सबही जान्यो आजु।
अब जो कहौ सो करि बनै, कहे तुम्हारे काजु ॥६८॥

रामतिलकोत्सव

[दोधक छंद]

सातहु सिंधुन के जल रूरे। तीरथजालनि के पय पूरे।
कंचन के घट बानर लीने। आइ गये हरि आनँद भीने ॥६९॥

[दो०] सकल रत्नमय मृत्तिका, शुभ औषधी अशेष।
सात द्वीप के पुष्प फल, पल्लव रम सविशेष ॥७०॥

[दोधक छंद]

आँगन हीरन को मन मोहै। कुंकुम चंदन चर्चित सोहै।
है सरसी सम सोभप्रकासी। लोचन मीन मनोज विलासी ॥७१॥

[दो०] गजमोतिनयुत सोभिजै, मरकतमनि के थार।
उदक बुंद सौं जनु लसत, पुरइनिपत्र अपार ॥७२॥

[विशेषक छंद]

भाँतिन भाँतिन भाजन राजत कौन गनै।
ठौरहि ठौर रहे जनु फूलि सरोज घनै ॥
भूपन के प्रतिबिंब विलोकत रूप रसे।
खेलत है जल माँझ मनो जलदेव बसे ॥७३॥

[पद्धटिका छंद]

मृगमद मिलि कुकुम सुरभिनीर।
घनसार सहित अवर उसीर॥
वसि केशरि सो वहु विविध नीर।
छिति छिरके चर थावर सरीर॥७४॥
बहु वर्ण फूल फल दल उदार।
तहँ भरि राखे भाजन अपार॥
तहँ पुष्प वृक्ष सोभै अनेक।
मणिवृक्ष स्वर्ण के वृक्ष एक[1]॥७५॥
तेहि उपर रच्यो एकै वितान।
दिवि देखत देवन के विमान॥
दुहुँ लोक होत पूजा-विधान।
अरु नृत्य गीत वादित्र गान॥७६॥
तरु ऊमरि[2] को आसन अनूप।
वहु रचित हेममय विश्वरूप॥
तहँ बैठे आपुन आइ राम।
सिय सहित, मनौ रति रुचिर काम॥७७॥
जनु घन दामिनि आनद देत।
तरुकल्प कल्पवल्ली समेत॥
है कैधौ विद्या सहित ज्ञान।
कै तपसयुत मन सिद्धि जान॥७८॥

---

(१) एक = अपूर्व। (२) ऊमरि = गूलर।

कै विक्रम युत कीरति प्रवीन।
कै श्री नारायन सोभलीन॥
कै अति सोभित स्वाहा सनाथ।
कै सुंदरता शृंगार साथ॥७९॥

[सुंदरी छंद]

केसव शोभन छत्र विराजत।
जा कहँ देखि सुधाधर लाजत॥
शोभित मोतिन के मनि के गनु।
लोकन के जनु लागि रहे मनु॥८०॥

[दो०] शीतलता शुभता सबै, सुंदरता के साथ।
अपनी रवि की अंशु लै, सेवत जनु निशिनाथ॥८१॥

[सुंदरी छंद]

ताहि लिये रविपुत्र सदारत।
चमर विभीषन अंगद ढारत॥
कीरति लै जग की जनु वारत।
चंद्रक[1] चंदन चंद सदारत[2]॥८२॥
लक्ष्मण दर्पण को देखरावत।
पाननि लक्ष्मण बंधु खवावत॥
भर्थ लै लै नरदेव सदारत।
देव अदेवनि पायन पारत॥८३॥

---

(१) चंद्रक = कपूर। (२) सदारत = सदा + आर्त = नित्य दुखी।

[दो०] जामवंत हनुमत नल, नील मरातिब[1] साथ।
छरी छबीली शोभिजै, दिगपालन के हाथ ॥८४॥
रूप बहिक्रम सुरभि सम, वचन रचन बहु भेव।
सभा मध्य पहिचानिए, नर नरदेव न देव ॥८५॥
आयी जब अभिषेक की, घटिका केसवदास।
बाजे एकहि बार बहु, दुदुभि दीह अकास ॥८६॥

[झूलना छद]

तब लोकनाथ विलोकि कै रघुनाथ कों निज हाथ।
सविशेष सों अभिषेक की पुनि उच्चरी शुभ गाथ ॥
ऋषिराज इष्ट वसिष्ठ सो मिलि गाधिनंदन आइ।
पुनि बालमीकि बियास आदि जिते हुते मुनिराइ ॥८७॥
रघुनाथ शभु स्वयभु[2] को निज भक्ति दी सुख पाइ।
सुरलोक कों सुरराज कों किय दीह निर्भय राइ ॥
विधि सैा ऋषीशन सैा विनय करि पूजियौ परि पाइ।
बहुधा दई तपवृत्त की सब सिद्धि सिद्ध सुभाइ ॥८८॥

[दो०] दीन्हों मुकुट विभीषणै, अपनो अपने हाथ।
कठमाल सुग्रीव कों, दीन्ही श्रीरघुनाथ ॥८९॥

[चचरी छद]

माल श्रीरघुनाथ के उर शुभ्र सीतहि सो दयी।
अरपियो हनुमत कों तिन दृष्टि कै करुनामयी ॥

---

(१) मरातिब=माहीमरातिब, शाहशाही झडा। (२) स्वयभू=ब्रह्मा।

और देव अदेव वानर याचकादिक पाइयो।
एक अंगद छोडि कै ज्वइ जासु के मन भाइयो ॥९०॥
अंगद—देव हौ नरदेव वानर नैर्ऋतादिक धीर हौ।
भरत लक्ष्मण आदि दै रघुवंश के सब वीर हौ॥
आजु मोसन युद्ध माँडहु एकएक अनेक कै।
बाप को तब हौ तिलोदक दीह देहुँ विवेक कै ॥९१॥
राम–[दो०] कोऊ मेरे वश मैं, करिहै तोसों युद्ध।
तब तेरो मन होइगो, अंगद मोसो शुद्ध ॥९२॥

रामराज्य-वर्णन

[भुजंगप्रयात छंद]

अनंता[1] सबै सर्वदा शस्ययुक्ता।
समुद्रावधिः सप्त[2] ईती विमुक्ता॥
सदा वृक्ष फूले फले तत्र सोहैं।
जिन्हैं अल्पधी कल्प साखी विमोहैं ॥९३॥
सबै निम्नगा[3] छीर के पूर पूरी।
भयी कामगो सी सबै धेनु रूरी॥
सबै वाजि स्वर्वाजि ते तेज पूरे।
सबै दंति स्वर्दंति ते दर्प रूरे ॥९४॥

---

(१) अनंता = पृथ्वी। (२) सप्तईति = अवर्षण, अतिवर्षण, चूहे, टिड्डी, तोते, स्वराष्ट्र की तथा शत्रु-राष्ट्र की सेना, जिनसे खेती को हानि पहुँचती है। (३) निम्नगा = नदी।

सबै जीव हैं सर्वदानंद पूरे।
क्षमी संयमी विक्रमी साधु शूरे॥
युवा सर्वदा सर्व विद्या विलासी।
सदा सर्व संपत्ति शोभा प्रकाशी॥ ९५
चिरंजीव संयोग योगी अरोगी।
सदा एकपत्नीव्रती भोग भोगी॥
सबै शील सौंदर्य सौगंध धारी।
सबै ब्रह्मज्ञानी गुणी धर्मचारी॥ ९६।
सबै न्हान दानादि कर्म्माधिकारी।
सबै चित्त चातुर्य्य चिंताप्रहारी॥
सबै पुत्र पौत्रादि के सुक्ख साजैं।
सबै भक्त माता पिता के विराजैं॥ ९७॥
सबै सुंदरी सुंदरी साधु सोहैं।
शची सी सती सी जिन्हैं देखि मोहैं॥
सबै प्रेम की पुण्य की सद्मिनी[1] सी।
सबै चित्रिणी पुत्रिणी पद्मिनी सी॥ ९८॥
भ्रमै संभ्रमी, यत्र शोकै सशोकी।
अधर्मैं अधर्मी, अलोकै[2] अलोकी[3]॥
दुखै तौ दुखी, ताप तापाधिकारी।
दरिद्रै दरिद्री, विकारै विकारी॥ ९९॥

---

(१) सद्मिनी = हवेली, घर। (२) अलोक = अपलोक, बद-नामी, अयश। (३) अलोकी = बदनाम, कलंकी।

[चौपाई]

होम धूम मलिनाई जहाँ। अति चचल चलदल है तहाँ ॥
बाल-नाश है चूडाकर्म्म। तीक्षणता आयुध के धर्म्म ॥१००॥
लेत जनेऊ भिक्षा दानु। कुटिल चाल सरितानि बखानु ॥
व्याकरणै द्विज वृत्तिन हरै। कोकिलकुल पुत्रन परिहरै ॥१०१॥
फागुहि निलज लोग देखिए। जुवा देवारी को लेखिए।
नित उठि बेझोई मारिए। खेलत मे केहूँ हारिए ॥१०२॥

[दडक]

भावै जहाँ बिभिचारी, वैद्य रमैं परनारी,
द्विजगन दडधारी, चोरी परपीर की।
मानिनीन हीं के मन मानियत मान भग,
सिंधुहि उलघि जाति कीरति शरीर की ॥
मूलै तौ अधोगतिन पावत हैं केसोदास,
मीचु ही सो है बियोग इच्छा गगानीर की।
बध्या बासनानि जानु, बिधवा सुबाटिकाई,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥ १०३ ॥

[दो०] कविकुल ही के श्रीफलन, उर अभिलाष समाज।
तिथि ही को क्षय होत है, रामचंद्र के राज ॥१०४॥

[दंडक]

लूटिबे के नाते पाप पट्टनै तौ लूटियतु,
तोरिबे को मोहतरु तोरि डारियतु है।

घालिबे के नाते गर्व घालियतु देवन के,
जारिबे के नाते अघ-ओघ जारियतु है ॥
बाँधिबे के नाते ताल बाँधियतु केसोदास,
मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है ।
राजा रामचद्र जू के नाम जग जीतियतु,
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है ॥ १०५ ॥

[चद्रकला छद]

सब के कलपद्रुम के वन हैं, सब के बर बारन गाजत हैं ।
सब के घर शोभति देवसभा, सब के जय दुदुभि बाजत हैं ।
निधि सिद्धि विशेष अशेषनि सों, सब लोग सबै सुख साजत हैं ।
कहि केसव श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं ॥१०६॥

[दडक]

जूझहि में कलह, कलहप्रिय नारदै,
कुरूप है कुबेरै, लोभ सब के चयन को ।
पापन की हानि, डर गुरुन को, बैरी काम,
आगि सर्वभक्षी, दुखदायक अयन को ।
विद्या ही में बादु, बहुनायक है वारिनीधि,
जारज है हनुमंत, मीत उदयन को ।
आँखिन अछत अ ध, नारि केर कृश कटि,
ऐसो राज राजै राम राजिवनयन को ॥ १०७ ॥

[दो०] कुटिल कटाक्ष, कठोर कुच, एकै दुःख अदेय ।
द्विस्वभाव अश्लेष मे, ब्राह्मण जाति अजेय ॥ १०८ ॥

[तोमर छंद]

बहु शब्द बचक जानि। अलि पश्यतोहर[1] मानि।
नर छाँहईं अपवित्र। शर खग निर्दय मित्र ॥१०९॥

[सो०] गुण तजि औगुणजाल, गहत नित्यप्रति चालनी।
पुंश्चली ति[2] तेहिकाल, एकै कीरति जानिबे ॥११०॥

[दो०] धनद लोक सुरलोक मय, सप्तलोक के साज।
सप्तद्वीपवति महि बसी, रामचंद्र के राज ॥१११॥
दशसहस्र दश सै बरस, रसा बसी यहि साज।
स्वर्ग नर्क के मग थके, रामचंद्र के राज ॥११२॥

सीता-त्याग

[सुंदरी छंद]

एक समय रघुनाथ महामति।
सीतहिं देखि सगर्भ बढ़ी रति॥
सुंदरि माँगु जो जी महँ भावत।
मो मन तो निरखे सुख पावत ॥११३॥

सीता—जो तुम होत प्रसन्न महामति।
मेरे बढ़ै तुमहीं सो सदा रति॥
अंतर की सब बात निरंतर।
जानत हौ सब की सबतें पर ॥११४॥

---

(१) पश्यतोहर = देखते देखते चुरानेवाला। (२) ति = तिय; स्त्री।

राम-[दो०] निर्गुण ते मैं सगुण भो, सुनु सुदरि तव हेत ।
और कछू माँगौ सुमुखि, रुचै जो तुम्हरे चेत[1] ॥११५॥

[सुदरी छद]

सीता—जो सबते हित मोकहँ कीजत ।
ईश दया करिकै बरु दीजत ॥
है जितने ऋषि देवनदी तट ।
हौं तिनकों पहिराय फिरौं पट ॥११६॥

राम-[दो०] प्रथम दोहदै[2] क्यों करौं निष्फल सुनि यह बात ।
पट पहिरावन ऋषिन कों, जैयो सुदरि प्रात ॥११७॥

[सुदरी छ द]

भोजन कै तब श्रीरघुनंदन ।
पौढ़ि रहे बहु दुष्टनिकदन ॥
बाजे बजे ;अधरात भई जब ।
दूतन आइ प्रणाम करी तब ॥११८॥

[चंचला छद]

दूत भूत भावना[3] कही कही न जाय बैन ।
कोटिधा विचारियो परै कछू विचार मैं न ॥
सूर के उदोत होत बधु आइयो सुजान ।
रामचद्र देखियो प्रभात चंद्र के समान ॥११९॥

---

(१) चेत = चित्त । (२) दोहदै = गर्भवती की इच्छा । (३) भूत भावना = किसी जीव के विचार ।

[संयुता छंद]

बहु भाँति वदनता करी। हँसि बोलियो न दया धरी।
हमते कछू द्विजदोष है। जेहिते कियो प्रभु रोष है ॥१२०॥
[दो०] मनसा वाचा कर्मणा, हम सेवक सुनु तात।
कौन दोष नहिं बोलियतु, ज्यौं कहि आये बात ॥१२१॥

[सयुता छंद]

राम—कहिए कहा न कही परै। कहिए तौ ज्यौ बहुतै डरै।
तब दूत बात सबै कही। बहु भाँति देह दशा दही ॥१२२॥
भरत-[दो०] सदा शुद्ध अति जानकी, निंदति त्यौं खलजाल।
जैसे श्रुतिहि सुभाव ही, पाखंडी सब काल ॥१२३॥
भव अपवादनि तें तज्यो, त्यौं चाहत सीताहिं।
ज्यौं जग के संयोग तैं, योगी जन समताहिं ॥१२४॥

[झूलना छंद]

मन मानि कै अति शुद्ध सीतहिं आनियो निज धाम।
अवलोकि पावक अंक ज्यौं रविअंक पकजदाम ॥
केहि भाँति ताहि निकारिहौ अपवाद बादि बखानि।
शिव ब्रह्म धर्म समेत श्रीपितु साखि बोलेहु आनि ॥१२५॥
यमनादि के अपवाद क्यों द्विज छोडिहैं कपिलाहि।
विरहीन को दुख देत क्यौं हर डारि चंद्रकलाहि ॥
यह है असत्य जो होइगो अपवाद सत्य सु नाथ।
प्रभु छोड़ि शुद्ध सुधा न पीवहु आपने विष हाथ ॥१२६॥

[दो०] प्रिय पावनि प्रियवादिनी, पतिव्रता अति शुद्ध।
जग को गुरु अरु गुर्व्विणी[1] छाँड़त वेदविरुद्ध ॥१२७॥
वे माता वैसे पिता, तुमसों भैया पाइ।
भरत भये अपवाद के, भाजन भूतल आइ ॥१२८॥

[हरिलीला छंद]

राम—साँची कही भरत बात सबै सुजान।
सीता सदा परम शुद्ध कृपानिधान ॥
मेरी कछू अबहिं इच्छ यहै सो हेरि।
मोकों हतौ बहुरि बात कहौ जो फेरि ॥१२९॥

[दोधक छंद]

लक्ष्मण—दूषत जैन सदा शुभ गंगा।
छोड़हुगे वह तुंग तरंगा ॥
मायहि निंदत हैं सब योगी।
क्यों तजिहैं भव भूपति भोगी ॥१३०॥
ग्यारसि[2] निंदत है मठधारी।
भावति हैं हरिभक्तनि भारी ॥
निंदत है तव नामनि बामी[3]।
का कहिए तुम अंतर्यामी ॥१३१॥

[दो०] तुलसी कों मानत प्रिया, गौतमतिय अति अज्ञ।
सीता कों छोडन कहौ, कैसे कै सर्वज्ञ ॥१३२॥

---

(१) गुर्व्विणी = गर्भवती। (२) ग्यारसि = एकादशी। (३) वामी = वाममार्गी।

[रूपमाला छंद]

शत्रुघ्न—स्वप्नहू नहिं छोडिए तिय गुर्व्विणी पल दोइ।
छोडियो तब शुद्ध सीतहिं गर्भमोचन होइ॥
पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ।
लोक लोकन मै अलोक न लीजिए रघुराइ॥१३३॥

[दो०] रामचंद्र जगचंद्र तुम, फल दल फूल समेत।
सीता या बन पद्मिनी, न्यायन हीं दुख देत॥१३४॥
घर घर प्रति सब जग सुखी, राम तुम्हारे राज।
अपनेहि घर कत करत हौ, शोक अशोक समाज॥१३५॥

[तोटक छंद]

राम—तुम बालक हौ बहुधा सबमैं।
प्रति उत्तर देहु न फेरि हमैं॥
जो कहैं हम बात सो जाइ करौ।
मन मध्य न और विचार धरौ॥१३६॥

[दो०] और होइ तौ जानिजै[1], प्रभु सों कहा बसाइ।
यह विचारि कै शत्रुहा, भरत उठे अकुलाइ॥१३७॥

[दोधक छंद]

राम—सीतहि लै अब सत्वर[2] जैए।
राखि महावन मे पुनि ऐए॥

---

(१) जानिजै = समझ लेते, लड़कर होश ठिकाने कर देते।
(२) सत्वर = शीघ्र।

लक्ष्मण जो फिरि उत्तर दैहौ ।
शासन-भंग को पातक पैहौ ॥१३८॥
लक्ष्मण लै वन सीतहिं धाये ।
थावर जंगम हू दुख पाये ॥
गंगहि देखि कह्यो यह सीता ।
श्रीरघुनायक की जनु गीता ॥१३९॥
पार भये जबहीं जन दोऊ ।
भीम बनी जन जंतु न कोऊ ॥
निर्जल निर्जन कानन देख्यो ।
भूत पिशाचन को घर लेख्यो ॥१४०॥

[नगस्वरूपिणी छंद]

सीता—सुनौं न ज्ञानकारिका । शुकी पढ़ै न सारिका ॥
न होमधूम देखिए । सुगंध बंधु लेखिए ॥१४१॥
सुनौ न वेद की गिरा । न बुद्धि होति है थिरा ॥
ऋपीन की कुटी कहाँ ? पतिव्रता बसैं जहाँ ॥१४२॥
मिलै न कोउ एकहूँ । न आवते, न जातहूँ ॥
चले हमैं कहाँ लिये । डेराति है महा हिये ॥१४३॥
[दो०] सुनि सुनि लक्ष्मण भीत अति, सीताजू के बैन ।
उत्तर मुख आयो नहीं, जल भरि आये नैन ॥१४४॥

[नाराच छंद]

विलोकि लक्ष्मणै भई विदेहजा विदेह सी ।
गिरी अचेत ह्वै मनो घनै बनै तड़ीत सी ॥

करी जो छाँह् एक हाथ एक बात[1] बास[2] सौ।
सिंच्यो शरीर बीर नैननीर हीं प्रकाश सौं ॥१४५॥

[रूपमाला छंद]

राम की जपसिद्धि सी सिय को चले बन छाँड़ि।
छाँह् एक फनी करी फन दीह् मालनि माँडि ॥
बालमीकि विलोकियो वन-देवता जनु जानि।
कल्पवृत्तलता किधौं दिवि ते गिरी भुव आनि ॥१४६॥
सींचि मंत्र सजीव जीवन जी उठी तेहि काल।
पूँछियो मुनि कौन की दुहिता बहू अरु बाल ॥
सीता—हौ सुता मिथिलेश की दशरत्थपुत्र-कलत्र।
कौन दोष तजी, न जानति, कौन आपुन अत्र ? ॥१४७॥
मुनि—पुत्रिके सुनि मोहिं जानहि बालमीकि द्विजाति।
सर्वथा मिथिलेश को गुरु सर्वदा शुभ भाँति ॥
होहिगे सुत द्वै सुधी पगु धारिए मम ओक।
रामचद्र छितीश के सुत जानिहै तिहुँ लोक ॥१४८॥
सर्वथा गुनि शुद्ध सीतहिं लै गये मुनिराइ।
आपनी तपसान की शुभ सिद्धि सी सुख पाइ ॥
पुत्र द्वै भये एक श्री कुश दूसरो लव जानि।
जातकर्महि आदि दै किय वेद भेद बखानि ॥१४९॥
[दो०] वेद पढ़ायो प्रथमही, धनुर्वेद सविशेष।
अस्त्र-शस्त्र दीन्हे घने, दीन्हे मत्र अशेष ॥१५०॥

---

(१) बात = हवा। (२) बास = वस्त्र।

कुत्ते की नालिश

[दोधक छंद]

कूकुर—काहुके क्रोध विरोध न देख्यो।
राम को राज तपोमय लेख्यो॥
तामहँ मैं दुख दीरघ पायो।
रामहिं हौं सो निवेदन आयो॥१५१॥

राजसभा महँ श्वान बोलायो। रामहि देखत ही सिर नायो।
राम कह्यो जो कछू दुख तेरे। श्वान निशंक कहो पुर[1] मेरे॥१५२॥

श्वान-[दो०] निज स्वारथ ही सिद्धि द्विज, मोको कर्‍यो प्रहार।
बिन अपराध अगाधमति, ताको कहा विचार॥१५३॥

ब्राह्मण-[दो०] यह सोवत हो पथ मैं, हौं भोजन को जात।
मैं अकुलाइ अगाधमति, याको कीन्हों घात॥१५४॥

[तोमर छंद]

राम-सुनि श्वान कहि तू दंड। हम देहिं याहि अखंड॥
कहि बात तू डर डारि। जिय मध्य आपु विचारि॥१५५॥

श्वान-[दो०] मेरो भायो करहु जो, रामचंद्र हित मंडि।
कीजै द्विज याहि मठपती, और दंड सब छंडि॥१५६॥

[निशिपालिका छंद]

पीत पहिराइ पट बाँधि शिर सों पटी।
बोरि अनुराग अरु जोरि बहुधा गटी[2]॥

---

(१) पुर = सामने (पुरः)। (२) गटी = समूह।

पूजि परि पायँ मठु ताहि तबहीं दयो।
मत्त गजराज चढ़ि विप्र मठ को गयो॥ १५७॥

[सुदरी छद]

बूझत लोग सभा महँ श्वानहि।
जानत नाहिन या परिमानहिं॥
विप्रहि तै जो दई पदवी वह।
है यह निग्रह कैधौं अनुग्रह॥ १५८॥

श्वान-कथित मठपति-निंदा

[दोधक छद]

श्वान—एक दिना यक पाहुन आयो।
भोजन सो बहुभाँति बनायो॥
ताहि परोसन को पितु मेरो।
बोलि लियो हित हो सब केरो॥ १५९॥
ताहि तहाँ बहु भाँति परोसो।
केहूँ कहूँ नख माँह रह्यो सो॥
ताहि परोसि जहीं घर आयो।
रोवत हो हँसि कठ लगायो॥ १६०॥

[चामर छ द]

मोहि मातु तप्त दूध भात भोज को दियो।
बात सों सिराइ तात छीर अ गुली छियो॥
द्यो द्रव्यो, भख्यों, गयो अनेक नर्कवान भो।
हौं भ्रम्यो अनेक योनि औध आनि स्वान भो॥ १६१॥

[दो०] वाको थोरो दोष मैं, दीन्हो दड अगाध ॥
राम चराचर-ईश तुम, छमियो यह अपराध ॥१६२॥

लवणासुर-वध

[भुजगप्रयात छद]

बिदा ह्वै चले राम पै शत्रुहता।
चले साथ हाथी रथी युद्धरता ॥
चतुर्द्धा चमू चारिहू ओर गाजैं।
बजैं दुंदुभी दीह दिग्देव लाजैं ॥१६३॥

[दो०] केसव वासर बारहे, रघुपति केशव वीर।
लवणासुर के यमनि ज्यों, मेले यमुना तीर ॥१६४॥

[मनोरमा छद]

लवणासुर आइ गयो यमुनातट।
अवलोकि हँस्यो रघुनदन के भट ॥
धनुबाण लिये निकसे रघुनदन।
मद के गज कौ, सुत केहरि को जनु ॥१६५॥

[भुजगप्रयात छ द]

लवणासुर—सुन्यो तै नहीं जो इहाँ भूलि आयो।
बडो भाग मेरो बडो भच्छ पायो ॥
शत्रुघ्न—महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसों।
तजै देश को, कै सजै युद्ध मोसो ॥१६६॥
लवणासुर—वहै राम राजा दशग्रीवहता ?
सो तो बंधु मेरो सुरस्त्रीनरता ॥

हतौं तोहिं वाकौ करौं चित्त भायो।
महादेव की सैां बडो भक्त पायो ॥१६७॥
भये क्रुद्ध दोऊ दुवौ युद्धरता।
दुवौ अस्त्र शस्त्र प्रयोगी निहता ॥
बली विक्रमी धीर शोभा प्रकाशी।
नश्यो हर्ष दोऊ सबर्षैं बिनाशी ॥१६८॥

शत्रुघ्न–[दो०] लवणासुर शिवशूल बिन, और न लागै मोहिं।
शूल लिये बिन भूलिहूँ, हैा न मारिहैा तोहिं ॥१६९॥

[मोटनक छ द]

लीन्हों लवणासुर शूल जहीं। मारेउ रघुन दन बान तहीं ॥
काट्यो शिर शूल समेत गयो। शूली कर, सु:ख त्रिलोक छयो॥१७०॥
बाजे दिवि दु दुंभि दीह तबै। आये सुर इद्र समेत सबै ॥
देव—
कीन्हों बहु विक्रम या रन मै। माँगौ वरदान रुचै मन मैं ॥१७१॥

[प्रमाणिका छ द]

शत्रुघ्न—सनाढ्यवृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै।
अकालमृत्यु सो मरै। अनेक नर्क मों परै ॥१७२॥
सनाढ्य जाति सर्वदा। यथा पुनीत नर्मदा।
भजै सजै जे सपदा। विरुद्ध ते असपदा ॥१७३॥

[दो०] मथुरामडल मधुपुरी, केशव स्ववश बसाइ ॥
देखे तब शत्रुघ्नजू, रामच द्र के पाँइ ॥१७४॥

रामाश्वमेध

विश्वामित्र वसिष्ठ सौं, एक समय रघुनाथ।
आरभो केशव करन, अश्वमेध की गाथ ॥१७५॥

[चामर छ द]

राम—मैथिली समेति तौ अनेक दान मै दियो ॥
राजसूय आदि दै अनेक जज्ञ मैं कियो ॥
सीय-त्याग पाप ते हिये सों हौं महा डरौ ॥
और एक अश्वमेध जानकी विना करौ ॥१७६॥

कश्यप-[दो०] धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तरुणि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ॥१७७॥

[तोटक छ द]

करिए युतभूषण रूपरयी।
मिथिलेशसुता इक स्वर्णमयी ॥
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये।
शुचि सों सब यज्ञ बिधान किये ॥१७८॥
हयशालन ते हय छोरि लियो।
शशिवर्ण सो केशव शोभ रयो ॥
श्रुति श्यामल एक विराजतु है।
अलि ज्यों सरसीरुह लाजतु है ॥१७९॥

[रूपमाला छद]

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल।
भूपि भूषन शत्रुदूषण छोडियौ तेहि काल ॥

संग लै चतुरग सैनहि शत्रुहता साथ ।
भाँति भाँतिन मान दै पठये सो श्री रघुनाथ ॥१८०॥
जात है जित वाजि केशव जात हैं तित लोग ।
बोलि विप्रन दान दीजत यत्र तत्र सभोग ॥
बेणु बीन मृदंग बाजत दुदुभी बहु भेव ।
भाँति भाँतिन होत मगल देव से नरदेव ॥१८१॥

सेना-वर्णन

[कमल छंद]

राघव की चतुरग चमू-चय को गनै केशव राज-समाजनि ?
सूरतुरंगन के उरझै पग तुग पताकन की पट साजनि ।
टूटि परै तिन तैं मुकुता धरनी उपमा बरनी कबिराजनि ।
बिंदु किधौं मुखफेनन के, किधौं राजसिरी स्रवै मगललाजनि ॥१८२॥
राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छायी ।
मानौ प्रताप हुतासन धूम सौं केसवदास अकासन मायी ।
मेटिकै पंच प्रभूत किधौं बिधि रेनुमयी नवरीति चलायी ।
दुःख निवेदन को भव-भार कौ भूमि किधौं सुरलोक सिधायी ॥१८३॥

[दडक छंद]

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि वन चूरि गिरि,
शोष शोषि जल भूरि भूरि थल गाथ की ।
केसौदास आस पास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी सपति सब आपनेही हाथ की ।

उन्नत नवाइ, नत उन्नत बनाइ भूप,
शत्रुन की जीविकाऽति मित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आयी दिशि दिशि जीति सेना रघुनाथ की ॥ १८४ ॥

दो०] दिशि विदिशनि अवगाहि कै, सुख ही केशवदास।
बालमीकि के आश्रमहिं, गयौ तुरग प्रकाश ॥१८५॥

[दोधक छंद]

दूरहि तै मुनि बालक धाये।
पूजित वाजि विलोकन आये॥
भाल को पट्ट जहीं लव बाँच्यो।
बाँधि तुरगम जयरस राँच्यो ॥ १८६ ॥

[श्लोक]

एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः।
तेन रामेण मुक्तोसौ वाजी गृह्णात्विम बली ॥ १८७ ॥

[दोधक छंद]

घोर चमू चहुँ ओर ते गाजी।
कौनेहि रे यह बाँधिय वाजी॥
बोलि उठे लव मैं यह बाँध्यो।
यों कहिकै धनुसायक साँध्यो॥
मारि भगाइ दिये सिगरे यौं।
मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यौं ॥ १८८ ॥

लव-शत्रुघ्न युद्ध

[धार छंद]

योधा भगे वीर शत्रुघ्न आये।
कोदंड लीन्हे महा रोष छाये॥
ठाढ़ो तहाँ एक बालै विलोक्यो।
रोक्यौ तहीं जोर, नाराच मोक्यो[1] ॥ १८९ ॥

[सुंदरी छंद]

शत्रुघ्न—बालक छाँड़ दे छाँड़ि तुरंगम।
तोसो कहा करौं संगर-संगम॥
ऊपर वीर हिये करुना रस।
वीरहि विप्र हते न कहूँ यश॥ १९० ॥

[तारक छंद]

लव—कछु बात बड़ी न कहौ मुख थोरे।
लव सों न जुरौ लवणासुर भोरे॥
द्विजदोषन ही बल ताकौ सँहार्‌यो।
मरिही जो रह्यो, सो कहा तुम मार्‌यो॥ १९१ ॥

[चामर छंद]

रामबंधु बान तीनि छोड़ियो त्रिशूल से।
भाल मे विशाल ताहि लागियो ते फूल से॥
लव—घात कीन राजतात गात तैं कि पूजियो।
कौन शत्रु तैं हत्यौ जो नाम शत्रुहा लियो॥ १९२ ॥

---

(१) मोक्यो = (मोच्यो) छोड़ा।

[निशिपालिका छंद]

रोष करि बाण बहु भाँति लव छंडियो ।
एक ध्वज सूत युग तीनि रथ खंडियो ॥
शस्त्र दशरत्थ-सुत अस्त्र कर जो धरै ।
ताहि सियपुत्र तिल तूल सम खंडरै ॥१९३॥

[तारक छंद]

रिपुहा तब बाण वहै कर लीन्हो ।
लवणासुर को रघुनंदन दीन्हो ॥
लव के उर में उरझ्यो वह पत्री[1] ।
मुरझाइ गिर्यो धरणी महँ छत्री ॥१९४॥

[मोटनक छंद]

मोहे लव भूमि परे जबहीं ।
जय-दुंदुभि बाजि उठे तबहीं ॥
भुव ते रथ ऊपर आनि धरे ।
शत्रुघ्न सों यौ करुणानि भरे ॥१९५॥
घोडा तबहीं तिन छोरि लयो ।
शत्रुघ्नहिं आनंद चित्त भयो ॥
लैकै लव कों ते चले जबहीं ।
सीता पहँ बाल गये तबहीं ॥१९६॥

---

(१) पत्री = बाण ।

बालक— [झूलना छंद]

सुनु, मैथिली नृप एक को लव बाँधियो वर बाजि।
चतुरंग सैन भगाइकै तब जीतियो वह आजि॥
उर लागि गौ शर एक कों भुव मैं गिर्यो मुरझाइ।
वह बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बजाइ॥१९७॥

[दो०] सीता गीता पुत्र की, सुनि सुनि भई अचेत।
मनौ चित्र की पुत्रिका, मन क्रम वचन समेत॥१९८॥

[झूलना छंद]

सीता–रिपु हाथ श्रीरघुनाथ को सुत क्यों परैं करतार।
पति देवता सब काल तौ लव जी उठै यहि बार॥
ऋषि हैं नहीं, कुश है नहीं, लव लेइ कौन छुडाइ।
बन माँझ टेर सुनी जहीं कुश आइयो अकुलाइ॥१९९॥

कुश–[दो०] रिपुहि मारि संहारि दल, यम ते लेउँ छुडाइ।
लवहि मिलैहौं देखिहौं, माता तेरे पाँइ॥२००॥

[सवैया]

गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बालि बली बर[1] सो बर[2] पेर्यो।
ढाहि दिये शिर रावण के गिरि से गुरु जात न जातन हेर्यो॥
शूल समूल उखारि लियो लवणासुर पीछे ते आइ सो टेर्यो।
राघव को दल मत्त करी सुर[3] अंकुश दै कुश केशव फेर्यो॥२०१॥

---

(१) बर = वट वृक्ष। (२) बर = बल से। (३) सुर = ललकार; टेर।

[दो०] कुश की टेर सुनी जहाँ, फूलि फिरे शत्रुघ्न।
दीप विलोकि पतंग ज्यों, तदपि भयो बहु विघ्न ॥२०२॥

[मनोरमा छंद]

रघुनंदन कौ अवलोकतहीं कुश।
उर माँझ हयो शर शुद्ध निरकुश ॥
ते गिरे रथ ऊपर लागतहीं शर।
गिरि ऊपर ज्यों गजराज कलेवर ॥ २०३ ॥

[सुदरी छ द]

जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन।
भाजि गये तबहीं भट के गन ॥
काढ़ि लियो जबहीं लव को शर।
कठ लग्यौ तबहीं उठि सोदर ॥ २०४ ॥

[दो०] मिले जो कुश लव कुशल सों, वाजि बाँधि तरुमूल।
रणमहि ठाढे शोभिजैं, पशुपति गणपति तूल ॥२०५॥

[रूपमाला छंद]

यज्ञमडल मैं हुते रघुनाथ जू तेहि काल।
चर्म अ ग कुरंग को शुभ स्वर्ण की सँग बाल ॥
आस पास ऋषीश शोभित शूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल[1] लोग वरणे युद्ध की सब गाथ ॥ २०६ ॥

---

(१) भग्गुल = भगेड़।

[स्वागता छंद]

भग्गुल—वालमीकि थल वाजि गयो जू।
विप्र बालकन घेरि लयो जू॥
एक बाँचि पट घोटक बाँध्यो।
दौरि दीह धनुमायक साँध्यो॥ २०७॥
भाँति भाँति सब सैन सँहारयो।
आपु हाथ जनु ईश सँवारयो॥
अस्त्र शस्त्र तब बधु जो धारयो।
खंड खड करि तावहूँ डारयो॥ २०८॥
रोष वेष वह बाण लयो जू।
इद्रजीत लगि आपु दयो जू॥
काल रूप उर माँह हयो जू।
वीर मूर्छि तब भूमि भयो जू॥ २०९॥

[तोमर छंद]

वह वीर लै अरु बाजि। जबही चल्यो दल साजि॥
तब और बालक आनि। मग रोकियौ तजि कानि॥२१०॥
तेहि मारियो तुव बंधु। तब ह्वै गयो सब अंधु।
वह बाजि लै अरु वीर। रण मैं रह्यो रुपि धीर॥ २११॥
[दो०] बुधि बल विक्रम रूप गुण, शील तुम्हारे राम।
काकपच्छधर बाल द्वै, जीते सब सग्राम॥ २१२॥

राम— [चतुष्पदी छंद]

गुणगण प्रतिपालक रिपुकुलघालक बालक ते रनरंता।
दशरथ नृप को सुत, मेरो सोदर, लवणासुर को हंता॥
कोऊ द्वै मुनिसुत काकपक्षयुत, सुनियत हैं, जिन मारे॥
यहि जगतजाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे॥२१३॥

[मरहट्टा छंद]

लक्ष्मण शुभलक्षण बुद्धि विचक्षण लेहु बाजि को शोधु।
मुनि शिशु जनि मारेहु बधु उधारेहु क्रोध न करेहु प्रबोधु॥
बहु सहित दक्षिणा दै प्रदक्षिणा चल्यो परम रणधीर।
देख्यो मुनिबालक सोदर उपज्यो करुणा अद्भुत वीर॥२१४॥

[दोधक छंद]

लक्ष्मण को दल दीरघ देख्यो।
कालहु ते अति भीम विशेख्यो॥
कुश—दो मैं कहौ सो कहा लव कीजै।
आयुध लैहौ कि घोटक दीजै॥२१५॥

लक्ष्मण से लव-कुश का युद्ध

लव—बूझत हौ तौ यहै प्रभु कीजै।
मो असु[1] दै वरु अश्व न दीजै॥
लक्ष्मण को दल सिंधु निहारो।
ताकहँ बाण अगस्त्य तिहारो॥२१६॥

कौन यहै घटिहैं अरि घेरे।
नाहिंन हाथ शरासन मेरे॥
नेकु जही दुचितो चित कीन्हों।
सूर बड़ो इपुधी[1] धनु दीन्हों॥२१७॥
लै धनु बाण बली तब धायो।
पल्लव ज्यौं दल मारि उड़ायो॥
यौं दोउ सोदर सैन सँहारै।
ज्यौं वन पावक पौन विहारै॥२१८॥
भागत हैं भट यौं लव आगे।
राम के नाम ते ज्यों अघ भागे॥
यूथप यूथ यौं मारि भगायो।
बात बड़े जनु मेघ उड़ायो॥२१९॥

[सवैया]

अति रोष रसै कुश केशव श्रीरघुनायक सों रणरीति रचैं।
तेहिं बार न बार भई बहु बारन खङ्ग हनै न गनै बिरचैं[2]॥
तहँ कुंभ फटैं गजमोती कटैं ते चले बहु श्रोणित रोचि रचैं।
परिपूरण पूर[3] पनारेन तै, जनु पीक कपूरन की किरचैं॥२२०॥

[नाराच छंद]

भगे चपे चमू चमूप छोडि छोडि लक्ष्मणै।
भगे रथी महारथी गयंद वृंद को गणै॥

(१) इषुधी = तरकस। (२) विरचै = क्रुद्ध होते हैं।
(३) पूर = धार।

कुशै लवै निरकुशै विलोकि बधु राम को।
उठ्यो रिसाइ कै बली बँध्यो सो लाज दाम को ॥२२१॥

[मौक्तिकदाम छंद]

कुश—न हौं मकराक्ष न हौं इंद्रजीत।
विलोकि तुम्हे रण होहुँ न भीत॥
सदा तुम लक्ष्मण उत्तमगाथ।
करौ जनि आपनि मातु अनाथ ॥२२२॥

लक्ष्मण—कहौ कुश जो कहि आवति बात।
विलोकत हौं उपवीतहि गात॥
इते पर बालवयक्रम[1] जानि।
हिये करुणा उपजै अति आनि ॥२२३॥
विलोचन लोचत[2] हैं लखि तोहि।
तजौ हठ आनि भजौ किन मोहिं॥
क्षम्यों अपराध अजौं घर जाहु।
हिये उपजाउ न मातहि दाहु ॥२२४॥

[दोधक छंद]

हौ हतिहौं कबहूँ नहिं तोहीं। तू बरु बाणन बेधहि मोहीं।
बालक विप्र कहा हनिए जू। लोक अलोकन में गनिए जू ॥२२५॥

कुश— [हरणी छंद]

लक्ष्मण हाथ हथ्यार धरौ। यज्ञ वृथा प्रभु को न करौ।
हौं हय कौ कबहूँ न तजौं। पट्ट लिख्यौ सोइ बाँचि लजौं ॥२२६॥

---

(१) बालवयक्रम = बाल्यावस्था। (२) लोचत = सकुचाते।

[स्वागता छंद]

बाण एक तब लक्ष्मण छड्यो । चर्म बर्म बहुधा तिन खंड्यो ॥
ताहि हीन कुश चित्तहि मोहै । धूमभिन्न जनु पावक सोहै ॥२२७॥
रोष वेष कुश बाण चलायो । पानचक्र जिमि चित्त भ्रमायो ॥
मोह मोहि रथ ऊपर सोये । ताहि देखि जड़ जंगम रोये ॥२२८॥

[नाराच छंद]

विराम[1] राम जानि कै भरत्थ सों कथा कहैं ।
विचारि चित्त माँझ वीर, वीर वे कहाँ रहैं ॥
सरोष देखि लक्ष्मणै त्रिलोक तौ विलुप्त है ।
अदेव देवता त्रसै कहा ते बाल दीन द्वै ॥२२९॥

[रूपमाला छंद]

राम—जाहु सत्वर दूत लक्ष्मण हैं जहाँ यहि बार ।
जाइ कै यह बात वर्णहु रक्षियो मुनिबार[2] ॥
हैं समर्थ सनाथ वै असमर्थ और अनाथ ।
देखिबे कहँ ल्याइयो मुनिबाल उत्तमगाथ ॥२३०॥

[सुंदरी छद]

भग्गुल आइ गये तबहीं बहु ।
बार[3] पुकारत आरत रक्षहु ॥
वे बहुभाँतिन सैन सँहारत ।
लक्ष्मण तौ तिनकों नहिं मारत ॥२३१॥

---

(१) विराम = देर । (२) बार = बाल । (३) बार = द्वार ।

बालक जानि तजै करुणा करि।
वे अति ढीठ भये दल सहरि॥
केहुँ न भाजत गाजत हैं रण।
बीर अनाथ भये बिन लक्ष्मण॥२३२॥
जानहु जै[1] उनको मुनिबालक।
वे कोउ हैं जगती-प्रतिपालक॥
हैं कोउ रावण के कि सहायक।
कै लवणासुर के हित लायक॥२३३॥
भरत—बालक रावण के न सहायक।
ना लवणासुर के हित लायक॥
हैं निज पातक-वृक्षन के फल।
मोहत हैं रघुवंशिन के बल॥२३४॥
जीतहि को रणमाँझ रिपुघ्नहि।
को करै लक्ष्मण के बल विघ्नहि॥
लक्ष्मण सीय तजी जब ते बन।
लोक अलोकन पूरि रहे तन॥२३५॥
छोडोइ चाहत ते तब ते तन।
पाइ निमित्त करेउ मन पावन॥
शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर लाजनि।
पूत भये तजि पाप समाजनि॥२३६॥

---

(१) जै=जिन, मत।

[दोधक छंद]

पातक कौन तजी तुम सीता।
पावन होत सुने जग गीता ॥
दोष विहीनहिं दोष लगावै।
सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥२३७॥
हमहूँ तेहि तीरथ जाइ मरैंगे।
सतसंगति दोष अशेष हरैंगे ॥
वानर राक्षस ऋच्छ तिहारे।
गर्व चढ़े रघुवंशहि भारे ॥
तालगि कै यह बात विचारी।
हौ प्रभु संतत गर्व-प्रहारी ॥२३८॥

[चचरी छंद]

क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर कों चले।
जामवंत चले बिभीषण और बीर भले भले ॥
को गनै चतुरंग सेनहिं रोदसी[1] नृपता[2] भरी।
जाइकै अवलोकियो रण मै गिरे गिरि से करी ॥२३९॥

लव-भरत युद्ध

[रूपमाला छंद]

जामवंत विलोकि कै रण भीमभू हनुमंत।
श्रोण की सरिता बही सुअनंत रूप दुरंत ॥

---

(१) रोदसी = भूमि और आकाश। (२) नृपता = राजाओं के समूह।

यत्र तत्र ध्वजा पताका दीह देहनि भूप ।
टूटि टूटि परे मनौ बहु बात वृच्छ अनूप ॥ २४० ॥
पुंज कुंजर सुभ्र स्यंदन सोभिजै सुठि सूर ।
ठेलि ठेलि चले गिरीसनि पेलि सोनित पूर ॥
ग्राहतुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म विसाल ।
चक्र से रथचक्र पैरत गृद्ध वृद्ध मराल ॥ २४१ ॥
केकरे कर बाहु मीन गयंद सुंड भुजंग ।
चीर चौर सुदेस केस सिबाल जानि सुरंग ॥
बालुका बहु भाँति हैं मनिमाल जाल प्रकास ।
पैरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केसवदास ॥ २४२ ॥
[दो०] नामबरण लघु वेप लघु, कहत रीझि हनुमंत ।
इतो बडो विक्रम कियो, जीते युद्ध अनंत ॥ २४३ ॥

[तारक छंद

भरत—हनुमंत दुरंत नदी अब नाषौ ।
रघुनाथ सहोदर जी अभिलाषौ ॥
तब जो तुम सिंधुहि नाँघि गये जू ।
अब नाँघहु काहे न भीत भये जू ॥ २४४ ॥
हनुमान्–[दो०] सीतापद सम्मुख हुते, गये सिंधु के पार ।
विमुख भये क्यौं जाहुँ तरि, सुनौ भरत यहि बार॥२४५॥

[तारक छंद]

धनु बान लिये मुनिबालक आये ।
जनु मन्मथ के युग रूप सुहाये ॥

करिबे कहँ सूरन के मद हीने।
रघुनायक मानहुँ द्वै बपु कीने ॥ २४६ ॥
भरत—मुनिबालक हौ तुम यज्ञ करावौ।
सु किधौ बर बाजिहिं बाँधन धावौ ॥
अपराध क्षमौ सब आशिष दीजै।
बर बाजि तजौ, जिय रोष न कीजै ॥ २४७ ॥
[दो०] बाँध्यौ पट्ट जो शीश यह, क्षत्रिन काज प्रकास।
रोष करेउ बिन काज तुम, हम विप्रन के दास ॥ २४८ ॥

[दोधक छंद]

कुश—बालक वृद्ध कहौ तुम काको।
देहनि कौ, किधौं जीवप्रभा को ॥
है जड देह कहै सब कोई।
जीव, सो बालक वृद्ध न होई ॥ २४९ ॥
जीव जरै न मरै नहिं छीजै।
ताकहँ सोक कहा करि कीजै ॥
जीवहिं विप्र न क्षत्रिय जानौ।
केवल ब्रह्म हिये महँ आनौ ॥ २५० ॥
जो तुम देहु हमैं कछु सिच्छा।
तौ हम देहिं तुम्हैं यह भिच्छा ॥
चित्त विचार परै सोइ कीजै।
दोष कछू न हमे अब दीजै ॥ २५१ ॥

[स्वागता छंद]

विप्र बालकन की सुनि बानी।
क्रुद्ध सूरसुत भो अभिमानी ॥ २५२ ॥
सुग्रीव—विप्र-पुत्र तुम सीस सँभारौ।
राखि लेहि अब ताहि पुकारौ ॥ २५३ ॥

[गौरी छंद]

लव—सुग्रीव कहा तुमसों रन माडौ।
तो अति कायर जानि कै छाँडौं ॥
बालि तुम्हैं बहु नाच नचायो।
कहा रन मडन मोसन आयो ॥ २५४ ॥

[तारक छंद]

फलहीन सो ताकहँ बान चलायो।
अति बात भ्रम्यो बहुधा मुरझायो ॥
तब दौरि कै बान बिभीषन लीन्हों।
लव ताहि विलोकतही हँसि दीन्हों ॥ २५५ ॥

[सुदरी छंद]

आउ विभीषन तू रनदूषन।
एक तुही कुल को किलभूषन ॥
जूझ जुरे जे भले भय जी के।
शत्रुहि आइ मिले तुम नीके ॥ २५६ ॥

[दोधक छंद]

देववधू जबहीं हरि ल्यायो।
क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो॥
यों अपने जिय के डर आयो।
छुद्र सबै कुलछिद्र बतायो॥ २५७॥

[दो०] जेठो भैया अन्नदा, राजा पिता समान।
ताकी पत्नी तू करी पत्नी, मातु समान॥ २५८॥
को जानै कै बार तू, कही न ह्वैहै माइ।
सोई तैं पत्नी करी, सुनु पापिन के राइ॥ २५९॥

[तोटक छंद]

सिगरै जग माँझ हँसावत है।
रघुबंसिन पाप नसावत हैं॥
धिक तोकहँ तू अजहूँ जो जियै।
खल जाइ हलाहल क्यौं न पियै॥ २६०॥
कछु है अब तोकहँ लाज हिये।
कहि कौन विचार हथ्यार लिये॥
अब जाइ करीष[1] की आगि जरौ।
गरु बाँधि कै सागर बूडि मरौ॥ २६१॥

[दो०] कहा कहौं हौं भरत कों, जानत है सब कोय।
तोसों पापी संग है, क्यों न पराजय होय॥ २६२॥

---

(१) करीष = जंगली कडे; करसी।

बहुत युद्ध भो भरत सों, देव अदेव संसान।
मोहि महारथ पर गिरे, मारे मोहन बान ॥२६३॥

राम-कुश-संवाद

[दो०] भरतहि भयौ विलब कछु, आये श्रीरघुनाथ।
देख्यौ वह सग्रामथल, जूझि परे सब साथ ॥२६४॥

[तोटक छंद]

रघुनाथहि आवत आइ गये। रन मैं मुनिबालक रूप रये ॥
गुन रूप सुसीलन सौं रन मैं। प्रतिबिंब मनौ निज दर्पन मैं ॥२६५॥

[मधुतिलक छंद]

सीता समान मुखचद्र विलोकि राम।
बूझ्यो कहाँ बसत हौ तुम कौन ग्राम ॥
माता पिता कवन कौनेहि कर्म कीन।
विद्याविनोद शिष कौनेहि अस्त्र दीन ॥२६६॥

[रूपमाला छंद]

कुश—राजराज तुम्हैं कहा मम वस सौं अब काम।
बूझि लीन्हेहु ईस लोगन जीति कै सग्राम ॥
राम—हौं न युद्ध करौं कहे बिन विप्रवेष विलोकि।
वेगि वीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि ॥२६७॥
कुश—कन्यका मिथिलेश की हम पुत्र जाये दोइ।
बालमीक अशेष कर्म करे कृपारस भोइ ॥

अस्त्र, शस्त्र सबै दये अरु वेद भेद पढाइ।
आप को नहि नाम जानत, आजु लौं रघुराइ ॥२६८॥

[दोधक छंद]

जानकि के मुख अच्छर आने।
राम तहीं अपने सुत जाने॥
विक्रम साहस सील विचारे।
युद्ध कथा कहि आयुध डारे॥२६९॥

राम—अंगद जीति इन्हैं गहि ल्यावो।
कै अपने बल मारि भगावो॥
वेगि बुझावहु चित्त चिता कों।
आजु तिलोदक देहु पिता कों॥२७०॥
अंगद तौ अँग अंगनि फूले।
पौन के पुत्र कह्यो अति भूले॥
जाइ जुरे लव सौं तरु लै कै।
बात कही सतखंडन कै कै॥२७१॥

अंगद-लव-संग्राम

लव—अंगद जो तुम पै बल होतो।
तौ वह सूरज को सुत को तो?
देखत ही जननी जो तिहारी।
वा सँग सोवति ज्यौ बर-नारी?२७२॥
जा दिन तैं युवराज कहाये।
विक्रम बुद्धि विवेक बहाये॥

जीवत पै कि मरे पहँ जैहै।
कौन पिताहि तिलोदक दैहै ॥२७३॥
अंगद हाथ गहै तरु जोई।
जात तहीं तिल सौ कटि सोई ॥
पर्वत पुंज जिते उन मेले।
फूल के तूल लै बानन झेले ॥२७४॥
बानन वेधि रही सब देही।
बानर ते जो भये अब सेही[1] ॥
भूतल ते सर मारि उड़ायो।
खेल के कंदुक कौ फल पायो ॥२७५॥
सोहत है अध ऊरध ऐसे।
होत बटा नट को नभ जैसे ॥
जान कहूँ न इतै उत पावै।
गोवल चित्त दसौं दिसि धावै ॥२७६॥
बोल घर्‍यो सो भयो सुरभंगी।
ह्वै गयौ अंग त्रिसंकु को संगी ॥
हा रघुनायक हौं जन तेरो।
रच्छहु, गर्व गयो सब मेरो ॥२७७॥
दीन सुनी जन की जब बानी।
जी करुना तब बानन आनी ॥

---

(१) सेही = स्याही नामक वन-जंतु, शल्लकी।

छाँडि दियौ गिरि भूमि पर्यौई।
विह्वल ह्वै अति मानौ मर्यौई ॥२७८॥

[विजय छंद]

भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खडे करतार करे कै।
भारे भिरे रणभूधर भूप न टारे टरे इभ कोटि अरे कै॥
रोष सों खड्ग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहु गरे कै।
राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खाये मरे नग नाग मरे कै ॥२७९॥

[दोधक छंद]

वानर ऋच्छ जिते निशिचारी। सेन सबै इक बान सँहारी।
बान बिधे सब ही जब जोये। स्यंदन मै रघुनंदन सोये ॥२८०॥

[गीतिका छंद]

रन जोइ कै सब सीस भूषन संग्रहे जे भले भले।
हनुमंत कों अरु जामवंतहिं बाजि स्यौं ग्रसि लै चले॥
रन जीति कै लव साथ लै करि मातु के कुस पाँ परे।
सिर सूँघि कंठ लगाय आनन चूमि गोद दुवौ धरे ॥२८१॥

सीता-शोक

[रूपमाला छंद]

चीन्हि देवर कौ विभूषन देखि कै हनुमंत।
पुत्र हौं विधवा करी, तुम कर्म कीन दुरंत॥
बाप कौ रन मारियो अरु पितृभ्रातृ सँहारि।
आनियौ हनुमंत बाँधि न, आनियो मोहिं गारि ॥२८२॥

[दो०] माता, सब काकी करी विधवा एकहि बार ।
मो सी और न पापिनी, जाये वशकुठार ॥२८३॥

[दोधक छद]

पाप कहाँ हति बापहिं जैहौ ।
लोक चतुर्दश ठौर न पैहौ ॥
राजकुमार कहै नहिं कोऊ ।
जारज जाइ कहावहु दोऊ ॥२८४॥

कुश—मो कहँ दोष कहा सुनु माता ।
बाँधि लियो जो सुन्यो उन भ्राता ॥
हौं तुमहीं तेहि बार पठायौ ।
राम पिता कब मोहिं सुनायौ ॥२८५॥

[दो०] मोहिं विलोकि विलोकि कै, रथ पर पौढे राम ।
जीवत छोड्यौ युद्ध मैं, माता कर विश्राम ॥२८६॥

[सुदरी छद]

आइ गये तबहीं मुनिनायक ।
श्री रघुन दन के गुनगायक ॥
बात विचारि कही सिगरी कुस ।
दु ख कियो मन मैं कलिअ कुस ॥२८७॥

[रूपवती छद]

कीजै न विडबन सतति सीते ।
भावी न मिटै सु कहूँ जगगीते ॥

तू तौ पतिदेवन की गुरु, बेटी।
तेरी जग मृत्यु कहावति चेटी ॥२८८॥

[तोटक छंद]

सिगरे रनमंडल माँझ गये।
अवलोकतहीं अति भीत भये॥
दुहुँ बालन को अति अद्भुत विक्रम।
अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥२८९॥

सीता-राम-सम्मिलन

[दंडक छंद]

सोनित सलिल नर वानर सलिलचर,
गिरि बालिसुत विष बिभीषन डारे हैं।
चमर पताका गुडी बडवा अनल सम,
रोगरिपु जामवंत केशव विचारे है॥
वाजि सुरवाजि सुरगज से अनेक गज,
भरत सबंधु इंदु अमृत निहारे हैं।
सोहत सहित शेष रामचंद्र कुश लव,
जीति कै समरसिंधु साँचे हू सुधारे हैं॥२९०॥

सीता–[दो०] मनसा बाचा कर्मणा, जो मेरे मन राम।
तौ सब सेना जी उठै, होहि घरी न विराम ॥२९१॥

[दोधक छंद]

जीय उठी सब सेन सभागी।
केसव सोवत तें जनु जागी॥

स्यौं सुत सीतहि लै सुखकारी।
राघव के मुनि पाँयन पारी॥ २९२॥

[मनोरमा छंद]

सुभ सुंदरि सोदर पुत्र मिले जहँ।
वर्षा वर्षैं सुर फूलन की तहँ॥
बहुधा दिवि दुदुभि के गन बाजत।
दिगपाल गयदन के गन लाजत॥ २९३॥

[रूपमाला छंद]

सुंदरी सुत लै सहोदर वाजि लै सुख पाइ।
साथ लै मुनि वाल्मीकिहि दीह दुःख नसाइ॥
राम धाम चले भले यस लोकलोक वढाइ।
भाँति भाँति सुदेस केसव दुदुभीन बजाइ॥ २९४॥
भरत लक्ष्मण शत्रुहा पुर भीर टारत जात।
चौंर ढारत हैं दुवौ दिसि पुत्र उत्तमगात॥
छत्र है कर इंद्र के सुभ सोभिजै वहु भेव।
मत्तदंति चढ़े पढ़ैं जय शब्द देव नृदेव॥ २९५॥

[दोधक छंद]

यज्ञथली रघुनंदन आये।
धामनि धामनि होत बधाये॥
श्री मिथिलेशसुता बड भागी।
स्यौ सुत सासुन के पग लागी॥ २९६॥

चारि पुत्र द्वै पुत्र सुत, कौशल्या तब देखि।
पायौ परमानंद मन, दिगपालन सम लेखि ॥ २९७ ॥

[रूपमाला छंद]

यज्ञ पूरन कै रमापति दान देत अशेष।
हीर नीरज चीर मानिक वर्षि वर्षा वेप ॥
अंगराग तडाग बाग फले भले बहु भाँति।
भवन भूषण भूमि भाजन भूरि बासर राति ॥ २९८ ॥

[दो०] एक अयुत गज वाजि द्वै, तीनि सुरभि शुभवर्ण।
एक एक विप्रहिं दयी, केसव सहित सुवर्ण ॥ २९९ ॥
देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक।
मन भायौ पायौ सबन, कीन्हें सबन अशोक ॥ ३०० ॥

राज्य-वितरण

अपने अरु सोदरन के, पुत्र विलोकि समान।
न्यारे न्यारे देश दै, नृपति करे भगवान ॥ ३०१ ॥
कुश लव अपने, भरत के नंदन पुष्कर तक्ष।
लक्ष्मण के अंगद भये चित्रकेतु रणपक्ष ॥ ३०२ ॥

[भुजगप्रयात छंद]

भले पुत्र शत्रुघ्न द्वै दीप जाये।
सदा साधु सूरे बडे भाग पाये ॥
सदा मित्रपोषी हनैं शत्रु छाती।
सुबाहै बडो दूसरो शत्रुघाती ॥ ३०३ ॥

[दो०] कुश को दयी कुशावती, नगरी कोशल देस।
लव को दयी अवंतिका, उत्तर उत्तम वेस ॥३०४॥
पश्चिम पुष्कर को दयी, पुष्करवति है नाम।
तक्षशिला तक्षहिँ दयी, लयी जीति संग्राम ॥३०५॥
अंगद कहँ अंगदनगर, दीन्हों पश्चिम ओर।
चंद्रकेतु चंद्रावती, लीन्हों उत्तर जोर ॥३०६॥
मथुरा दयी सुबाहु कौं, पूरन पावनगाथ।
शत्रुघात कौं नृप करयो, देशहि को रघुनाथ ॥३०७॥

[तोटक छंद]

यहि भाँति सौं रक्षित भूमि भयी। सब पुत्र भतीजन बाँट दयी ॥
सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये। बहु भाँतिन के उपदेश दिये ॥३०८॥

राम-कथित नीति-शिक्षा

[चामर छंद]

बोलिए न झूठ, ईठि[1] मूढ़ पै न कीजई।
दीजिए जो बात, हाथ भूलिहू न लीजई ॥
नेहु तोरिए न देहु दुःख मंत्रि मित्र को।
यत्र तत्र जाहु पै पत्याहु जै[2] अमित्र को ॥ ३०९ ॥

[नाराच छंद]

जुवा न खेलिए कहूँ, जुबान[3] वेद रक्षिए।
अमित्रभूमि माहँ जै, अभक्ष भक्ष भक्षिए ॥

(१) ईठि = मित्रता। (२) जै = यदि (जदि, जइ)। (३) जुबान = जीभ।

करौ न मन्त्र मूढ सौं न गूढ मन्त्र खोलिए।
सुपुत्र होहु जै हठी मठीन सौ न बोलिए॥
वृथा न पीडिए प्रजाहि पुत्र मान[1] पारिए[2]।
असाधु साधु बूझि कै यथापराध मारिए॥
कुदेव[3] देव नारि को न बालवित्त लीजिए।
विरोध विप्रवश सो सो स्वप्नहू न कीजिए॥ ३१०॥

[भुजगप्रयात छंद]

पर-द्रव्य को तौ विषप्राय लेखौ।
परस्त्रीन सों ज्यौ गुरुस्त्रीन देखौ॥
तजौ काम क्रोधौ महा मोह लोभौ।
तजौ गर्व कौं सर्वदा चित्त छोभौ॥ ३११॥
यशै सग्रहौ निग्रहौ युद्ध योधा।
करौ साधु ससर्ग जो बुद्धि बोधा॥
हितू होइ सो देइ जो धर्मशिक्षा।
अधर्मीन को देहु जै वाक भिक्षा॥ ३१२॥
कृतघ्नी कुवादी परस्त्रीविहारी।
करौ विप्र लोभी न धर्माधिकारी॥
सदा द्रव्य सकल्प कों रक्षि लीजै।
द्विजातीन को आपुही दान दीजै॥ ३१३॥

---

(१) पुत्र मान = बेटे की तरह। (२) पारिए = पालिए। (३) कुदेव = (कु + देव) भूमिदेव, ब्राह्मण।